॥ श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

दश-अवतारी

महाकाव्य

: रचयिता :

विजय विद्याचन्द्रसूरि 'पथिक'

★

श्रीयतीन्द्रसूरीश्वर साहित्य माला पुष्पाङ्क ..

✻ श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ✻

दश अवतारी

[महा काव्य]

रचयिता—

श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरीश्वर पट्टालंकार

विजय विद्याचन्द्रसूरि

प्रकाशक

श्रीसौधर्मबृहत्तपोगच्छीय त्रिस्तुतिक श्रीसंघ

मुद्रक

श्री वर्धमान प्रिंटिंग प्रेस

निम्बाहेड़ा (राजस्थान)

प्राप्ति स्थान
श्री राजेन्द्र प्रवचन कार्यालय
मु० पो० खुड़ाला (राज.)
वाया—जवाइबांध

वीर संवत् २४९८
विक्रम संवत् २०२८
राजेन्द्र संवत् ६५
ईस्वी सन् १९७१
मूल्य ५) रु०

मिलने का पता
श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढ़ी
मोहनखेड़ा तीर्थ
पोस्ट : राजगढ़ जिला–धार (मध्य प्रदेश)

ॐ ह्रीँ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः

प्रकट प्रभावी श्रीशंखेश्वर तीर्थ मण्डन

श्री पार्श्वनाथ भगवान की जय

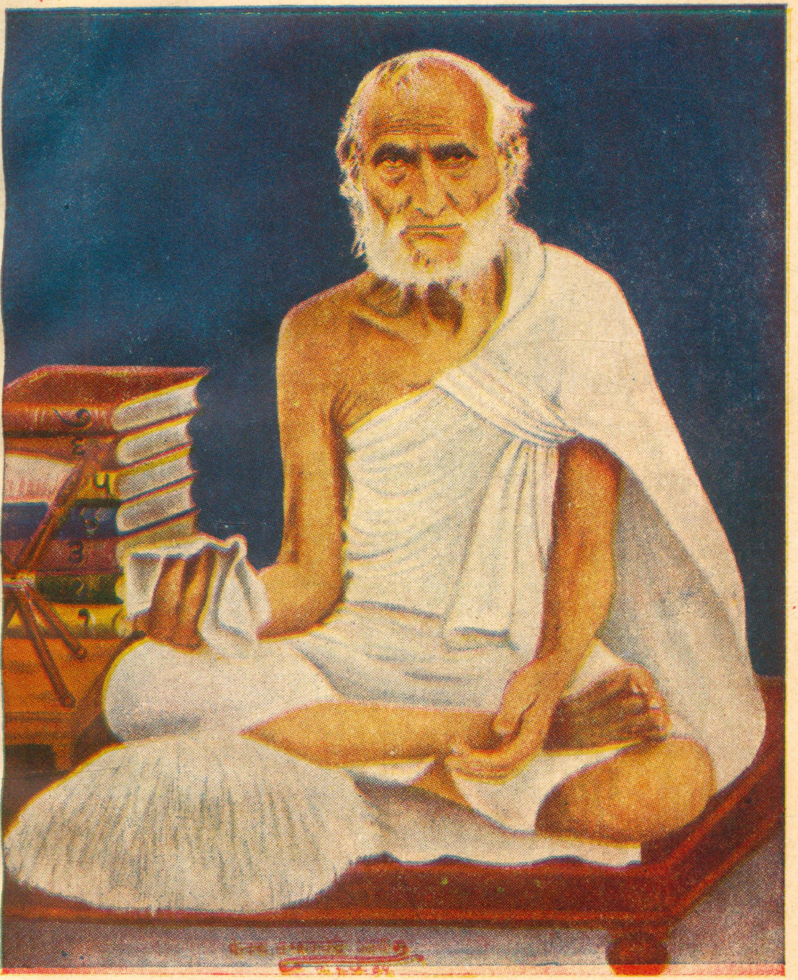

श्री सौधर्मबृहत्तपोगच्छीय
प्रातःस्मरणीय प्रभु श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी म०

जिन जिनेश्वर से प्रकटी प्रभा,
स्मरण मैं करता जिसका सदा,
सकल विघ्न विदार, प्रसाद दे,
सरस काव्य बने जिनदेव का।

श्री गुरुदेव को
समर्पण

द्रुतविलम्बित

विमल जीवन था गुण से भरा,
सुहृदयी करुणामय प्राण थे,
जगत-जीव समान विचारते,
अचल थे जिनशासन में सदा ।

चरण-पंकज में सिर को नमा,
कर रहा गुरुदेव यतीन्द्र को,
सरस काव्य समर्पण हे गुरो,
विरतिभाव बने इस जीव का ।

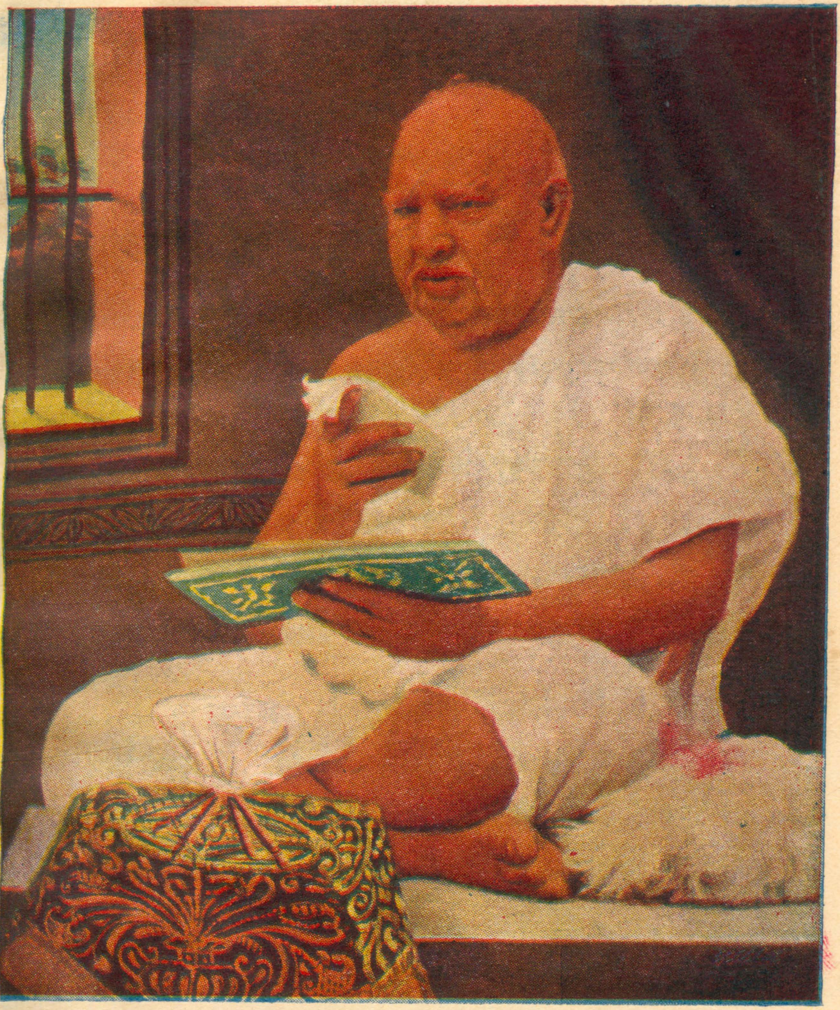

परम पूज्य प्रातःस्मरणीय गुरुदेवाचार्य भगवन्त
श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

शुभोद्गार

रचयिता

वैद्य श्रीदेव शास्त्री,

आयुर्वेदाचार्य, काव्यतीर्थ, आयुर्वेदालङ्कार, रामगढ़ (शेखावाटी राज.)

तपःप्रभासितबोधसूरिः संसारमायानवलिप्तभूरिः ।
शिक्षाप्रशिक्षांजननेत्रपूरी पायात् कविं सोऽत्र यतीन्द्रसूरिः
॥ १ ॥

श्रीमन्तःसरलावकीर्णकरुणापूरप्रभाभास्वराः,
अभ्यर्थिप्रणयावरुद्धहृदया सद्योदयाः सच्छ्याः ॥
योगाऽऽयोजनतो वियोगमहिता विद्यावतामाहिताः ।
विद्याचन्द्रसूरीश्वराःकविवरा जीव्यासुरन्तः स्थिताः ।२।

ये मोदाः 'हरिऔध' गीतिषुयता जैशंकरीयोक्तिषु ।
श्रीसिंहाख्यकवेः सदुक्तिषु पुनश्चास्वादिता ये रसाः ॥
ते सर्वेऽत्र दशावतारचरिते काव्ये च नव्ये मया ।
विद्याचन्द्रसूरीश्वरैर्विरचिते लब्धाश्चरित्यञ्जिते ॥३॥

अपनी ओर से

पाठकगण !

जिस काव्य में नवरसों का सञ्चार नहीं वह रस-विहीन काव्य, काव्य नहीं है। काव्य मानव के हृदय में आनन्द की अनुभूति करता है। परमानन्द की उर्मियाँ उठती हैं। ज्यों ज्यों अध्ययन होता है त्यों त्यों मनुष्य अपने जीवन की गहराई में जाता व मानवता का प्रतिकरण, पूर्व में जिन-जिन महाकवियों ने काव्य की रचना करके जो देन दी है उसका भारत ही नहीं विश्व की जनता अभिनन्दन कर रही है और करती रहेगी।

दश-अवतारी महा काव्य में अध्यात्म रस का पोषण किया गया है, व्यावहारिकता का विश्लेषण किया गया है और यह नैतिक जीवन का उत्थान करता है। मनुष्य अपने कर्मों के आवरणों से सुख दु:ख भोगता रहता है, यह अनादि की अविच्छिन्न परम्परा है।

कमठ और मरुभूति इस काव्य के पात्र हैं।

एक पतन की ओर जाता है, दूसरा परम पुनीत पद को प्राप्त करता है। उन्हीं का चित्रण है जीवन के प्रत्येक-पटल किस भाँति के रहे हैं? किस तरह जन्म-मरण के दु:ख से मुक्त होतीं हैं जीवात्माएं। जो भी काव्य-रसिक इस काव्य को स्नेह से पढ़ेगा, स्वाध्याय करेगा वह आत्म-कल्याण-पथ पर अग्रसर होगा। यद्यपि 'स्वांत: सुखाय' इस काव्य का निर्माण किया गया है, फिर भी अपनी आत्मा के साथ साथ दूसरों की आत्मा को भी सुख शान्ति प्राप्त हो इसी आशा के साथ यह रचना प्रस्तुत कर रहा हूँ। शुभम्

थराद, श्रावण शुक्ला ५
सं० २०२८

—विजयविद्याचन्द्रसूरि

परम कृपालु पूज्य गुरुदेव
श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज सा० के पट्ट-प्रभावक

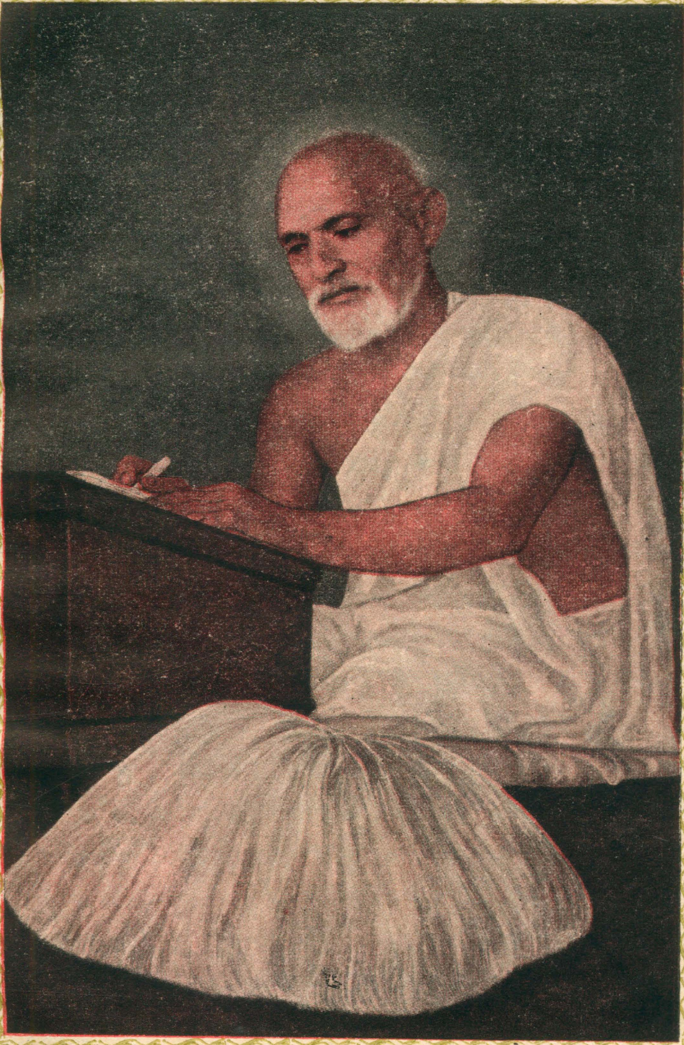

प्रस्तुत काव्य के निर्माता
आचार्यदेवेश श्रीमद्विजयविद्याचंद्रसूरीश्वरजी म.

भूमिका

卐

हिन्दी पद्यकवि विद्याचन्द्रसूरिजी महाराज, जिनका पूर्व नाम मुनि श्री विद्याविजयजी 'पथिक' उपनाम से प्रसिद्ध रहा, इसी नाम से आपने सं० २०११ में आहोर के चातुर्मास में 'शिवादेवी नन्दन-काव्य' हिन्दी की रचना की थी। इस वर्ष प्रारम्भ सं० २०२५ कार्तिक शुक्ला ५ ज्ञानपञ्चमी के शुभ दिन, पादरुपुरी (राजस्थान) में चातुर्मास की पूर्णाहुति के पहिले आपने श्री पार्श्वनाथ भगवान के दशभवात्मक चरित्र—"दशावतारी काव्य" की सरस रचना की है जो चौदह सर्गों में विभक्त हिन्दी पद्यों में है। संस्कृत रुचिर सरल शब्दों में संकलना है। सर्ग १ में ५७, सर्ग २ में ६१, सर्ग ३ में ८७, सर्ग ४ में ५८, सर्ग ५ में ४८, सर्ग ६ में ६८, सर्ग ७ में ६१, सर्ग ८ में ८०, सर्ग ९ में ८७, सर्ग १० में ५०, सर्ग ११ में ६०, सर्ग १२ में ६१, सर्ग १३ में ६७, और सर्ग १४ में ६४ परिमित पद्यों में श्रीपार्श्वनाथ भगवान के पूर्व भवों के वर्णन के साथ मोक्ष-कल्याणक पर्यन्त चरित्र वक्तव्य की समाप्ति की है। इस हिन्दी काव्य में विविध प्रसिद्ध वृत्तों की प्रसङ्गानुसार योजना की है। इसमें १ इन्द्रवज्रा, २ उपजाति, ३ उपेन्द्रवज्रा, ४ चञ्चला, ५ चामर (पञ्चचामर), ६ चित्रलेखा, ७ तोटक, ८ दोधक, ९ द्रुतविलम्बित, १० पृथ्वी, ११ प्रमुदितवदना, १२ प्रहर्षिणी, १३ भुजंगप्रयात, १४ मत्तगजेन्द्र, १५ मन्दाक्रांता, १६ मालिनी, १७ मोदक, १८ वसन्ततिलक, १९ वंशस्थ, २० शार्दूल विक्रीड़ित, २१ शिखरिणी, २२ शृङ्गारिणी,

२३ स्रग्धरा आदि भाववाही छन्दों में रचना सरस की है। पढ़ने वाले और सुनने वाले आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

इस सरस सुन्दर काव्य को कवि ने अपने सद्गत गुरुदेव को समर्पित किया है। सं० २०११ में तो स्वयं गुरुदेव विद्यमान थे, उनको पूर्व काव्य समर्पित किया था, आज स्वर्गीय गुरुदेव को स्मरण कर समर्पण किया, इनके उद्गार—

विमल जोवन था गुण से भरा,
सुहृदयो करुणामय प्राण थे।
जगत - जीव समान विचारते,
अचल थे जिनशासन में सदा ॥

चरण-पंकज में सिर को नमा,
कर रहा गुरुदेव यतीन्द्र को।
सरस काव्य - समर्पण हे गुरो,
विरतिभाव बने इस जीव का ॥

'पथिक' कविजी ने इस पार्श्वनाथ काव्य की समाप्ति के अन्तिम दो पद्यों में रचना-स्थल एवं समय आदि का निर्देश करते हुए गुरुदेव की कृपा का भी उल्लेख इस प्रकार किया है-

नाथ-संभवाघ्रि-छत्र-छांह ले प्रमोद में,
चार मास का निवास पादरुपुरी किया।
बाण-पाणि-व्योम-नेत्र (सं. २०२५) शुक्ल ज्ञानपंचमी,
पार्श्वनाथ काव्य पूर्ण है यतीन्द्र की दया।

गुरु यतीन्द्र मुनीन्द्र गुणीन्द्र की,
जब कृपा मुझपे उनकी हुई ।
'पथिक' मार्ग मिला गुरुदेव से,
मम सुखाय लिखा यह काव्य है ॥
(सर्ग १४, पद्य ६३, ६४)

तीसरे सर्ग के प्रारम्भ में और चौथे सर्ग के अन्तिम पद्य में भी (शब्द-श्लेष से) प्रातःस्मरणीय यतीन्द्र गुरुदेव का स्मरण किया है—

कृपा करोगे यह बाल आपका,
पदाम्बुजों में नमता प्रभात में ।
पवित्र मेरी मति हो पवित्र भी,
बनूं विवेकी विनयी 'यतीन्द्र' सा ॥

मुनीन्द्र के अमर्त्य के नरेन्द्र के प्रवास में,
चरित्र में पवित्रता स्वतन्त्र प्राण जानिये ।
यतीन्द्र ये बने तपोधनी तपा शरीर को,
प्रभात में प्रणाम है प्रमाद की क्षमा करें ॥

परम गुरुभक्त महाकवि ने संस्कृत सरल ललित शब्दावलि से इसकी रचना की है—इस काव्य को महाकाव्य के ढङ्ग पर रचा है । संस्कृत साहित्यकारों ने महा काव्य के कई लक्षण दर्शाये हैं, उनमें से कई लक्षण संक्षिप्त स्वरूप में इस हिन्दी काव्य में भी दिखलाई पड़ते हैं । इस काव्य में सर्ग संख्या १४ है और उनमें पद्य-संख्या भी परिमित है। विविध वृत्तों

की कुल संख्या ८७९ है, जिनमें मर्यादित स्वरूप में श्रीपार्श्व-नाथ भगवान का दशभवात्मक चारु चरित्र सङ्कुलित है। इसमें अनेक नगरों का वर्णन है। श्रीपार्श्वनाथ भगवान की कल्याणक भूमि वाराणसी नगरी का वर्णन खासकर पढ़ने योग्य है। इसमें नायक, नायिका प्रतिनायक, ऋतुओं का वर्णन, उद्यान-वृक्षों का वर्णन, अटवी का वर्णन, युद्ध का वर्णन, प्रासंगिक शृङ्गार, वीर आदि रस-वर्णन, सूर्योदय, सूर्यास्त समय-वर्णन संक्षिप्त स्व-रूप में भी पढ़ा जाता है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में प्रायः आगामी वर्णन का कुछ सूचन भी किया है। श्री पार्श्वकुमार के जन्म बाद शुभाशीर्वादात्मक ६ पद्य खास पढ़ने योग्य है, जिसका अन्तिम चरण यह है :—

'युग युग सुत जीवो भूप का प्राणप्यारा।' (सर्ग ६ पद्य ८२से८७)

सर्ग १३ में, ६२ से ६६ पाँच पद्यों द्वारा शक्रेन्द्र और राजा ने जो भक्तिगर्भित/प्रभु-प्रार्थना की है संस्मरणीय है, जिनका अन्तिम चरण यह है—

'चरणकमल-सेवा दीजिये प्रार्थना है।'

सर्ग १४ में ४५ से ५० पद्यों में जिनराज पधारने का आनंद वर्णन है, जिनके अन्तिम चरण में :—

'राजी हुए हैं जिनराज आये।' उल्लेख है।

इस काव्य में उपदेशात्मक कई सुभाषित पढ़ने और मनन करने योग्य है। नमूने के तौर पर थोड़े पद्यों का यहां अव-तरण करना उचित समझता हूं।

सर्ग २ का १५वां पद्य

नर धनांध मदांध न देखते,
न विषयांध पदांध न सोचते।
निज बलांध कुलांध न चाहते,
न हित ये करते पर का कभी॥

सर्ग २ का ४१वां पद्य

पय कभी बिगड़ा सुधरे नहीं,
असत को उपदेश लगे नहीं।
मन दयामय जिसका है नहीं,
फसल निष्फल ज्यों नरजन्म है।

सर्ग २ का ४६वां पद्य

कुकृत पाप कभी छिपता नहीं,
अटल सत्य कभी दबता नहीं।
करुणभाव कहीं रुकता नहीं,
विनयवान कभी छिपता नहीं।

सर्ग ३ का ५९वां पद्य

रत निरन्तर रौद्र विचार में,
न जिसका मन-भाव दयार्द्र हो।
वह मनुष्य नहीं पशु भी नहीं,
फिर यहां लिखना किस भाँति से।

सर्ग ३ का ३३वां उपदेशात्मक पद्य

आत्मा कभी दुखाना पर की ना,
कहो न मिथ्या करना न चोरी।
त्यागो पराई ललना सदा ही,
निधान खर्चो निज सप्त-भूमि।

सर्ग १४ का तीसरा पद्य

कभी ना हो हिंसा मन-वचन से और तन से,
कभी झूठी बातें न परजन की आप करना।
तजो प्राणी ! चोरी परधन सभी धूल समझो,
परा नारी को माँ सम समझना ब्रह्म व्रत ले।

कितना सुन्दर सारभूत उपदेश सरल सरस शब्दों में दर्शाया है ! पाठकगण समझ सकते हैं। इतना सरस सुन्दर काव्य की रचना करने पर भी कविराज मुनिराज ने प्रसङ्ग पर अपनी लघुता – नम्रता दर्शाई है। सर्ग २ के ६१वें पद्य में निर्देश है—

लिखा गया जो अविवेक से कहीं,
तथापि मेरी मति से प्रमाद से।
कभी कहीं भी त्रुटि हो चरित्र में,
महा क्षमावान मुझे क्षमा करें।

इसी तरह सर्ग ७ के ६१वें पद्य में सूचित किया है

मेरा कहीं भी अपराध हो तो,
देंगे क्षमाशील क्षमा मुझे भी।

ज्ञानी तपस्वी करते क्षमा हैं,
स्वीकार लेवें मम वन्दना को।

अधिक अवतरण—उद्धरण कर भूमिका को और बढ़ाना नहीं चाहता। इतने से ही मर्मज्ञ जिज्ञासु पाठकगण इस काव्य की सरसता, सरलता, मधुरता, चरित्र-वर्णनच्छटा समझ सकेंगे और आशा है कविराज को शतशः धन्यवाद इस कृति को खुद पढ़ने के बाद देंगे। 'पथिक' उपनामांकित कविराज मुनिराज आचार्य श्रीविद्याचन्द्रसूरीश्वरजी अभिनन्दन योग्य हैं, जिन्होंने अपने यशस्वी पूर्वज 'अभिधान राजेन्द्र कोष' नामक ७ भागमय महाकाय प्राकृत कोश की रचना करने वाले प्रभुश्रीराजेन्द्रसूरिजी का और अपने स्व० सुप्रसिद्ध गुरुवर्य श्रीयतीन्द्रसूरीश्वरजी के पद को दीपाया है, गौरव बढ़ाया है, धन्यवादार्ह है।

वि० सं० २०२५ का.शु.११
बड़ीवाड़ी रावपुरा, बड़ौदा
(गुजरात)

गुणानुरागी
लालचन्द भगवान गांधी

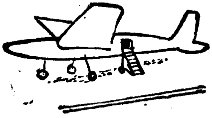

एक विहंगम दृष्टि

आज से पाँच वर्ष पूर्व 'पथिक' काव्य के तथा इसके लेखक श्रीमद्विजयविद्याचन्द्रसूरीश्वरजी महाराज से भीनमाल के चातुर्मास में मिलने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ। आप कवि होने के साथ-साथ महान् सुलझे हुए दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विद्वान् भी ज्ञात हुए। आपमें आध्यात्मिक विषयों की समन्वयवादी दृष्टि भी देखने को मिली। आध्यात्मिक जैसे विषय को काव्य द्वारा सरस रूप प्रदान कर सर्वसाधारण के हृदयों में प्रवेश कराना आपका मैं मौलिक गुण समझता हूं जैसा कि आपकी रचनाओं से प्रतीत होता है।

उसके बाद आपकी गद्यमयी पुस्तिका 'यतीन्द्र-वाणी' को मुझे देखने का अवसर मिला। गद्य-मुक्तकों में आपने श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के दार्शनिक विचारों का स्वयं की रोचक शैली में सङ्कलन किया है। उस समय मैंने भी 'पथिक' काव्य पर एक 'आलोचनात्मक अध्ययन' लिखा।

शनैः शनैः मैं आपके सम्पर्क में आता गया, तथा जब भी मुझे आपके पास आने का अवसर मिला, आप छन्द लिखते, संशोधन करते हुए तथा गुनगुनाते हुए ही मिलते। मैं कभी-कभी पूछ बैठता तो सौम्य एवं शान्त मुद्रा में उत्तर मिलता 'कुछ कर रहा हूँ।'

दो वर्षों के सतत प्रयत्न के बाद 'दश अवतारी महाकाव्य' पूर्ण हो गया। मुझे भी इस काव्य को पढ़ने का सौभाग्य मिला। तथा इस काव्य के विषय में श्रीलालचन्द्र भगवानदानदास गाँधी

निवृत्त जैन पण्डित बड़ौदा राज्य, आगम प्रभाकर, मुनिवर्य श्री पुण्यविजयजी म० ने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। बातचीत के दौरान ऐसे काव्य की आवश्यकता पर बल देते हुए वर्तमान युग में इसको अत्यन्त उपयोगी बतलाया।

यह काव्य आध्यात्मिक विषय का होते हुए भी सम्पूर्ण काव्यगत विशेषताओं से परिपूर्ण है। विशेषकर संस्कृत वर्णिक छन्दों (वर्ण-वृत्तों) में काव्य का निर्माण हिन्दी काव्यों में बहुत ही कम होता है। श्री हरिऔधजी का 'प्रियप्रवास' अति उत्कृष्ट श्रेणी का काव्य है। आपका दश-अवतारी भी उसी श्रेणी में आता है।

पाठकगण इस काव्य के पढ़ने का आनन्द लेकर ही निर्णय दे सकते हैं कि पार्श्वनाथ प्रभु के दशों भवों का ज्ञान कितनी रोचकता एवं सरसता से हो जाता है।

इस प्रकार के और भी अन्य काव्यों के निर्माण की अपेक्षा हम आचार्य श्री से रखते हैं। यही हमारी तीव्र अभिलाषा है।

कार्तिक पूर्णिमा
सं० २०२५
दि. ५-११-६८

शिक्षाशास्त्री हीरालाल दवे एम० ए०
राजकीय उच्चतर विद्यालय
गुड़ा बालोतरा

मुनिराजश्री सौभाग्यविजयजी महाराज के सदुपदेश से

प्रस्तुत काव्य प्रकाशन में

❀ सहायता देने वालों की नामावली ❀

५०५) शाह लालचन्द कपूरचन्दजी, सुमेरपुर

~~२५०~~) शाह पूनमचन्दजी मुलतानमलजी छाजेड़, मु० पादरू

२५०) शाह फूलचंद शेराजी सतावत मु० गुढ़ाबालोतरा

२५०) शाह अमरचन्द शम्भूजी मु० मीठुड़ा

२५०) शा० सांकलचन्दजी प्रभुचंदजी, ढीकाजीपाड़ा जोधपुर

२५१) शाह उमेदमलजी उकाजी मु० पालड़ी थानावली

२५०) शाह मिश्रीमलजी बछराजजी, बेंगलोर मु० धाणसा

२५१) शाह नथमलजी माँगीलालजी, विजयवाड़ा

२५०) शाह रखबजी कुन्दनमलजी रिखबचंदजी मांगीलाल बेटा पोता
जुहाराजी मु० सायला

२५१) शाह सोनराजजी सूरचन्दजी हरखचंद मु० मीठुड़ा
(फर्म : सोनराज हरकचंद सूरत)

२५१) श्री जैन श्वेतांबर श्रीसङ्घ समस्त मीठुड़ा

२५१) बालगोता शाह सायबचंदजी पन्नालाल मेघराज खसराज बेटा
पोता छोगाजी मु० मेंगलवा

२५१) शाह समेरमल गणेशमल छगनराज समेरमल महेन्द्रकुमार मु०
आलासण (राज०)

१५१) शाह मोहनलाल हीरालालजी सवाणी धानेरा

२०१) शाह धनराज मूलचंदजी धानेरा

---

५००) गुरुणीजी श्री गुलाबश्रीजी के उपदेश से भीनमाल श्रीसंघ

प्रथम सर्ग

❖

भुजङ्गप्रयातवृत्त

(१)

नमो पार्श्वस्वामी विमोही विरागी,
जिन्होंने तजी विश्व-माया-भुजङ्गी,
जनों को सुना त्रिगड़े देशना को,
तिराये अनेकों मुझे भी तिराना।

(२)

सुसम्यक्त्व की प्राप्ति, दें ! तत्त्वज्ञानी,
सहारा लिया है, कृपासिन्धु स्वामी,
अमर्त्येन्द्र-सेवी तिहूं लोक-स्वामी,
महातीर्थ संखेश्वरो आत्मरामी।

(३)

शार्दूलवृत्त

जम्बूद्वीप महान है, भरतभू सौंदर्य तन्मध्य में,
नाना ग्राम पुरी, महानगर भी जो स्वर्ग से भासते,
राज्य-प्रान्त विभिन्न शासन जहाँ राजा अनेकों करें,
श्रीराजा अरविन्द पोतनपुरी का वीर गम्भीर था।

(४)

द्रुतविलम्बित

पुर प्रकोट प्रगाढ़ सुदेहली,
धनद दक्षिण पश्चिम इन्द्रदिग्,
सुखद सौरभ था अरविन्द का,
अरि नहीं लखते उस ओर भी।

(५)

नृप सदा जन का हित चाहता,
मुदमना रहती नर-नारियाँ,
नव-नवा सुख भोगविलास में,
वह प्रजा अति वैभवशालिनी।

(६)

पुर सजावट ज्यों अमरावती,
सकल हाट निकेत सुरम्य थे,
विपुल वैभव से परिपूर्ण थे,
अधिक धर्म-प्रवृत्ति मनुष्य की।

(७)

सुगुण शील दया गुण 'धारिणी',
अति मनोहर रूप प्रमोदिनी,
कर विनोद विलास नरेन्द्र से,
सुखद जन्म दिया सुतरत्न को।

(८)

नगर की जनता अति हर्ष में,
घर सजे बहु भाँति विभाँति से,
नृपति का कुलदीपक जान के,
रख दिया तब नाम 'महेन्द्र' था।

(९)

कुँअर भी शशि ज्यों बढ़ता गया,
धनुर वेद पढ़ा सब शास्त्र भी,
कुँअर योग्य बना कुल-रीति में,
कर दिया सुत के शुभलग्न को।

(१०)

विमल श्री वर राज्यकुमारिका,
बन प्रिया युवराज 'महेन्द्र' की,
विविध भाँति सदैव प्रमोद में,
विपिन बाग सरोवर घूमते।

(११)

तब अपङ्ग दुःखी पर प्यार था,
मन सदैव दयालु स्वभाव था,
नगर के जन में शुभ भाव था,
वह बना नृप का मन-मोर था।

(१२)

अति विचक्षण थी नृप-मण्डली,
सचिव था नृप का गुणवन्त भी,
वह सदा जन का हित चाहता,
कुशल था परिचालन राज्य का।

(१३)

विविध वाचन-स्थान सुरम्य थे,
प्रणययुक्त मिलाप प्रहर्ष था,
युवक-मण्डल में अति प्रेम था,
विपद में सबका मन एक था।

(१४)

पतिव्रता-गुण-भूषित नारियाँ,
हृदय कोमल लज्जित भाव में,
स्थविर मानव का रख धर्म को,
कुशल थी अपने गृहकार्य में।

(१५)

मठ उपाश्रय धार्मिक स्थान में,
नित नया मिलता उपदेश था,
कर पवित्र हृदा 'पुर' की प्रजा,
शुभ क्रिया व्रत में रमती सदा ।

(१६)

नगर में वर था जिन चैत्य जो,
शिखर भाग विशाल 'सुशिल्प' थे,
कलश कंचन के, ध्वजदंड भी,
मधुर किंकिनियाँ करती ध्वनी ।

(१७)

मुकुलितानन दिग् रमणीय थी,
रवि-प्रभा उदयाचल से चली,
गगन भी कुछ रक्तिम हो गया,
खग करे कलनाद विनोद से ।

(१८)

तज प्रमाद उठो नर-नारियाँ,
सलिल से करना तन शुद्धि को,
वसन उत्तम धार शरीर पे,
विविध अष्ट सुद्रव्य पवित्र ले।

(१९)

चढ़ जिनालय की फिर श्रेणियाँ,
कर अवग्रह उत्तम भाव से,
कर प्रवेश परिक्रम 'तीन' दे,
मलविहीन जिनालय को लखें।

(२०)

ऋषभदेव दयालु जिनेन्द्र के,
चरण अम्बुज में कर वन्दना,
निरख के उनके नव अङ्ग को,
फिर करो जयणा जिन मूर्ति की।

(२१)

जल सुगन्धित से जिन बिम्ब था,
तुम करो अभिषेक विवेक से,
वसन को कर धूपित धूप में,
वसन-पूत करो प्रभु बिम्ब को।

(२२)

कर वहाँ उपयोग जलादि का,
सलिल से फिर धोकर ओरिसा,
शुभ बरास सुवास सुयुक्त हो,
मलय चन्दन केसर घुट्टनं।

(२३)

कर विधान्न निरामय भाव से,
वदन बंधन दे, शुभ वस्त्र का,
तिलक रम्य करो निज भाल में,
कुसुम आदिक अष्ट सुद्रव्य ले।

(२४)

निरखना प्रतिमा नव अंग से,
अपचित करना उपयोग से,
चरण-पद्म प्रपूज्य जिनेन्द्र के,
प्रबल पुण्य उपार्जन कीजिये।

(२५)

लख विरागमयी जिनमूर्ति को,
सकल विघ्न विदारक मान के,
विनय से करिये शुभ आरती,
फिर वहाँ कर मङ्गल दीप को।

(२६)

विनय से इरियावहियं वदो,
भवि पढ़ो जिन चैत्य 'नमुत्थुणं',
कुटिल कर्म कटे गुणगान से,
स्तुति करो भव की कथनी सुना।

(२७)

भव निगोद महा सह वेदना,
अब रहा व्यवहार सुराशि में,
सुधि मिली गुरु से भव मर्त्य की,
रुचि हुई शरणागत में रहूँ।

(२८)

प्रभु पदाम्बुज में कर वन्दना,
निकलना फिर मन्दिर से तभी,
हथिनि मन्दिर की फिर बैठना,
विमल भाव करो स्थिर चित्त में।

(२९)

कर अभिग्रह द्रव्य सुभोग के,
नियम चौदह श्रावक धारते,
सुबह शाम करे सुविचारणा,
कुछ हुआ व्रत विस्मृति जान के।

(३०)

फिर प्रवेश उपाश्रय में करो,
गुरु पदाम्बुज की कर वन्दना,
सुख समाधि शरीर चरित्र में,
कुशल है गुरुदेव सदैव ही।

(३१)

प्रवचनामृत पी गुरुदेव से,
प्रकट दोष करो व्रत में लगा,
विनय है यह श्रावक धर्म का,
उचरना गुरु से नवकारसी।

(३२)

पुर समीप ललाम वनस्थली,
विविध पादप शोभित थे घने,
बुध वहाँ रहते सुकुटीर में,
सतत वे रहते प्रभु भक्ति में।

(३३)

नगर के जन की शिशु मंडली,
विविध ज्ञान-कला पढ़ती वहाँ,
विचरती रमती बहु भाँति से,
समवयस्क प्रफुल्लित थे सदा।

(३४)

सजल कूप तथा वर कुंड थे,
पहुँचता जल था थल बेल से,
सब प्रफुल्लित थी तरु श्रेणियाँ,
वन विकासक, रक्षक घूमते।

(३५)

कलनिनाद विभाँति विहंग के,
विटप वल्लरियाँ लिपटी हुई,
मलय मारुत सौरभ-युक्त थी,
स्मर वहीं रहता अलि-रूप में।

(३६)

पिक-निनाद विनोद उमंग का,
नवलता द्रुम भू पर थी द्रुमा,
पति प्रिया स्थित होकर के वहाँ,
मुदमना करते गृह-मंत्रणा ।

(३७)

शिशु रमे उसको लख दम्पती,
मन प्रसन्न करे उसको हँसा,
मुदित भाव परस्पर वे दिखा,
भ्रमण यों करके फिर लौटते ।

(३८)

स्वजन के प्रति प्रीति अपूर्व है,
व्यसन सप्त तिरोहित हो चले,
सुधरता नरजीवन सत्य है,
यदि प्रजा रहती उस लक्ष्य में ।

(३९)

भुवनभूति पुरोहित था वहाँ,
प्रवर ज्योतिष-शास्त्र सुविज्ञ था,
चतुर था, जनता-प्रिय था भला,
सरल चित्त विवेक प्रधान था।

(४०)

सदन-दीप समान 'अनुद्धरा',
निपुण थी अपने गृहकार्य में,
सुत दिये उसने द्वय, रम्य थे,
वह सदा करती प्रतिपालना।

(४१)

मुदित हो पति को कहती प्रिया,
सब मनोरथ तो परिपूर्ण हैं,
तनुज हैं बलभद्र मुकुन्द से,
अब उन्हें गृह भार विशेष दें।

(४२)

नृप-सभा इनको दिखलाइये,
अनुभवी कर, योग्य बनाइये,
रत रहे नित धार्मिक कार्य में,
पुर-प्रजा-जन-वल्लभ ये बने।

(४३)

नवल यौवन में लख के उन्हें,
कर दिया उनका शुभलग्न भी,
'कमठ' की दयिता 'वरुणा' बनी,
प्रणयिनि 'मरुभूति' 'वसुन्धरा'।

(४४)

इन्द्रवज्रा

गार्हस्थ्यधर्मी द्वय बन्धुओं की,
वे पत्नियाँ थी विनयी विवेकी,
माता पिता की करती सुसेवा,
संतान का धर्म पवित्र मानो।

(४५)

उद्यान के रक्षक ने कहा यों,
आये हरिश्चन्द्र महा तपस्वी,
उद्यान की वृक्ष-लता प्रफुल्ली,
आनन्द माना नृप ने प्रजा ने।

(४६)

वैराग्य का शासन था अनूठा,
बैठे हुए कानन में तपस्वी,
आये जहाँ भूपति पौरवासी,
ज्ञानी विरागी मुनिराज बोले।

(४७)

अज्ञानता में अपना न जाना,
आत्मा निरूपी, तन है विनाशी,
जो भी भरोसा तन का करेगा,
संसार में वो तपता रहेगा।

(४८)

संसार की अस्थिर वस्तुएँ हैं,
ज्यों ओस-बूँदें क्षण में विनाशी,
त्यों आयु है मानव की विचारो,
कोई किसी का दिखता न साथी।

(४९)

राजा मनावे मन में खुशाली,
आना हुआ है कृतकृत्य मेरा,
है सत्य वाणी मुनिराज की जो,
चारित्र से ही नर मुक्ति पाता।

(५०)

द्रुतविलम्बित वृत्त

जन प्रभावित हो उपदेश से,
जगतभूति पुरोहित और भी,
नियम श्रावक के मुनि से लिये,
नगर को फिर लौट गये सभी।

(५१)

समझ के क्षणभंगुर विश्व को,
जगतभूति निजात्म सुधारते,
पद दिया अरविन्द नरेन्द्र ने,
कमठ राज्य-पुरोहित था बना ।

(५२)

नगर में यश था मरुभूति का,
विनयवान विवेक सुशील था,
दिवस-रात विनोद सुबोध में,
रत सदा रहता, गृह-कार्य में ।

(५३)

जनक औ जननी वपु जर्जरा,
तनुज दो करते निज सुश्रुषा,
विनय से कहते नित वैन वे,
मन विकल्प तजो निज गेह का ।

(५४)

जननि औ पितु के अवसान से,
'कमठ' का मन औ 'मरुभूति' का,
अधिक दुःखित था सहसा हुआ,
विधि बनी कुटिला उनके लिये।

(५५)

उपजातिवृत्त

शोकाश्रु को दूर निवार दोनों,
निवास न्यारे उनके हुए थे,
माता-पिता के ऋण को चुकाया,
सुकाल जाता सुख से उन्हों का।

(५६)

इन्द्रवज्रा

यों पौरवासी उनको बुलाते,
वे शास्त्र सामुद्रिक से बताते,
हो भाग्यशाली तुम पौरवासी,
दोनों इसीसे बहुमान पाते।

(५७)

गोष्ठी सुसंगी बुध-मंडली की,
होती सदा थी नृप की सभा में,
दो बंधुओं से नृप को खुशी थी,
बातें चमत्कारिक वे बताते।

(५८)

व्याख्यान आचार्य सदा सुनाते,
माया नटी की जग नाट्यशाला,
श्रीमन्त धर्मी कृतकृत्य होते,
आनन्द में हैं जन पौरवासी।

(५९)

सच्ची कथा है इतिहास साक्षी,
निकृष्ट बुद्धि कमठाधमात्मा,
माया छली ना मरुभूति आत्मा,
सगर्भ्य दोनों वन में मिलेंगे।

*

सर्ग २

❖

(१)

वसन्ततिलकावृत्त

थो विन्ध्य की तलहटी वनखंड भारी,
सौभाग्य 'पोतनपुरी' अति रम्य राजे,
सारी प्रजा मुदित थी धन धान्य वाली,
जो था महेन्द्र नृप का सुत प्राण प्यारा ।

(२)

ले अश्व को वह गया वन घूमने को,
आया नहीं समय पै दिन रात बीती,
चिंता करे नृपति औ रणिवास सारी,
विद्याधरी, पति, चुरा कर ले गया क्या ?

(३)

इन्द्रवज्रा

सारी प्रजा में यह शोक छाया,
आया नहीं है युवराज–वाजी,
भूपाल बैठा अपनी सभा में,
चिन्ता करे, सैनिक ढूँढते हैं।

(४)

शार्दूलवृत्त

विद्याचारण आगये नृपसभा चिंतामयी थी जहाँ,
ऊठी थी नृप की सभा श्रमण को की वंदना भाव से,
बोला भूपति साधु से, कर दया स्वामी पधारो यहाँ,
स्वीकारासन नाथ ने, नृपति को दी सान्त्वना मोद में।

(५)

इन्द्रवज्रा

चिंता तजो जीवन व्यर्थ जाता,
प्रस्थान होता इस जीव का है,
लेखा भवों का मिलता नहीं है,
है आगमों में जिनराज-वाणी।

पृष्ठ संख्या २२

(६)

आत्मार्थ आत्मा निज कर्म-भोक्ता,
साथी नहीं है धन पुत्र दारा,
व्याख्यान का लाभ लिया सभा ने,
आनन्द माना उपकार जाना ।

(७)

राजी खुशी से सुत सद्म आवे,
चारित्र्य लूँगा तप को करूँगा,
दूँगा उसे मैं यह राज्य सारा,
सङ्कल्प ऐसा कर भूप बोला ।

(८)

स्वामी कृपा हो सुत को बतावें,
होगा बड़ा ही उपकार स्वामी,
कैसे हुआ है हृत आप जानो,
ज्ञानी विभो ! जीवनदान देना ।

(९)

वैताढ्यवासी नभ का विहारी,
ले के गया है मणिचूड़ राजा,
राजी खुशी में तव पुत्र प्यारा,
लीला अनेकों करता वहाँ है।

(१०)

विद्या अनेकों वह प्राप्तकर्ता,
सानन्द में है तुम शोक त्यागो,
विद्या-विनोदी मणिचूड़ राजा,
देंगे उसे वे कुँवरी 'सुशीला'।

(११)

राजन् ! करो धर्म सुखे सदा हो,
शिक्षा अनूठी करके महात्मा,
आकाश मार्ग फिर लौट जाते,
आश्चर्य में, हर्ष मिला सभा को।

पृष्ठ संख्या २४

(१२)

हो के खड़ा 'कमठ' ज्योतिष देख बोला,
छः मास में बन धनी युवराज आवें,
त्यों ही उपस्थित वहाँ 'मरुभूति' बोला,
आशीष है श्रमण की वह सत्य होगी।

(१३)

द्रुतविलम्बित वृत्त

विमल अन्तर था 'मरुभूति' का,
निपुण था व्यवहार विवेक में,
हित सदा करता पर-जीव का,
पुर प्रजा उसको नित चाहती।

(१४)

'कमठ' लम्पट दुर्व्यसनी बना,
न उसको भय था व्यवहार का,
नित निरंकुश हो कर घूमता,
नगर औ वन कूप तड़ाग में।

(१५)

नर धनांध मदांध न देखते,
न विषयांध पदांध न सोचते,
निज बलांध कुलांध न चाहते,
न हित ये करते पर का कभी ।

(१६)

वदन-रूप अनूप वसुन्धरा,
चपलता-युत थी गृह-कार्य में,
'कमठ' का मन ही विषयांध था,
चढ़ गई उसके वह चित्त में ।

(१७)

कब मिले मुझको यह सुन्दरी,
वसन भूषण-आदिक भेजता,
रत बना तज के कुल रीत को,
लग गया दिन रात प्रयत्न में ।

(१८)

घर निराश्रय है 'मरुभूति' का,
यह विचार किया, घर में गया,
तन अधीर बना छिपता हुआ,
लख उसे भयभीत 'वसुन्धरा'।

(१९)

वह वहीं मन ही मन सोचती,
यह अभी उपयुक्त न वक्त है,
किसलिए घर में यह जेष्ठ है,
फिर विमूढ़ हुई अबला वहीं।

(२०)

न मुझसे डरना, प्रिय प्रेयसी,
बचन यों सुन, लज्जित थी बनी,
उचित ना सुन, संशय में पड़ी,
'कमठ' भूल गया व्यवहार क्यों ?

(२१)

विचरता रहता बन कामुकी,
उद्यम जीवन है उस मर्त्य का,
सरस यौवन में अति मत्त हो,
न लखता नर सत्य-असत्य को।

(२२)

बदल रूप उसे कहने लगी,
तज मुझे, तुम वंचक, दुष्ट हो,
कुल-कलङ्क मुझे तुमको लगे,
अरर ! तू बच जा इस पाप से।

(२३)

पकड़ के उसको निज कक्ष में,
विनय से उसको कहने लगा,
प्रिय ! निरर्थक यौवन जा रहा,
विषयहीन अरे ! 'मरुभूमि' है।

*

पृष्ठ संख्या २८

(२४)

हृदयवल्लभ हो तुम नर्मयिका,
मम निवेदन स्वीकृत हो अभी,
वदन चीर तभी खुलवा लिया,
विषयलीन नहीं कुछ देखता ।

(२५)

तज प्रिया अपनी, पर में लगा,
रत बना, रमणी परकीय में,
रत हुए नित भोगविलास में,
न समझा घर की कुल-रीति को ।

(२६)

समझ के 'वरुणा' इस वृत्त को,
उचित ना पति को कहने लगी,
शठ वहाँ फिर भी समझा नहीं,
तब कहा उसने 'मरुभूति' को ।

(२७)

सुन कथा उसने उससे कहा,
यह वृथा कथनी मुझ बन्धु की,
न कहना अब और कभी यहाँ,
मम सहोदर विज्ञ महान् हैं।

(२८)

घर गई वरुणा मन खिन्न हो,
पतित ना पति हो, पतवार हो,
सरल चित्त सदा 'मरुभूति' का,
अब मुझे करना कुछ चाहिये।

(२९)

फिर गई मरुभूति-निकेत को,
मन-व्यथा वह यों कहने लगी,
पति अयोग्य चरित्र-विहीन है,
त्वरित ही इसको अब रोकिये।

(३०)

'वरुण' को तब धीरज दी वहाँ,
तुम रहो अपने घर-कार्य में,
अब स्वयं यह निर्णय मैं करूँ,
मम सहोदर से खुद मैं मिलूँ।

(३१)

'कमठ' पास गया लख के समा,
विनय से हँस के उससे कहा,
गमन है करना परदेश को,
समय है शुभ आप निदेश दें।

(३२)

घर व्यवस्थित, है व्यवहार में,
न रखना घर की कुछ भावना,
सफल कार्य बना फिर लौटना,
सुख मना लघु बन्धु पधारिये।

(३३)

कर प्रणाम तभी निज बंधु को,
कर विहार गया वन-कुञ्ज में,
कर वहाँ परिवर्तन वेश का,
नगर को फिर लौट गया तभी ।

(३४)

अतिथि होकर के वह घूमता,
पथिक आश्रम आश्रय पूछता,
मिल गया कमठाधम द्वार से,
निकलता लख के, उसको कहा ।

(३५)

पथ थकावट को हरना मुझे,
ठहरना मुझको इक रात है,
शयन भी सुख पूर्वक मैं करूँ,
स्थल वही मुझको बतलाइये ।

(३६)

'कमठ'-चित्त समीर समान था,
न पहिचान सका 'मरुभूति' को,
वह गया दिखला निज ओसरी,
कपट-नींद बना वह सो गया।

(३७)

कर विलेपन चन्दन गात में,
पहिन भूषण रम्य 'वसुन्धरा',
निडर हो 'कमठालय' में गई,
हृदय स्वतन्त्र बने, बन कामुकी।

(३८)

'कमठ' का लख कुत्सित कर्म को,
अरर ! धिक् यह पाप विलोकना,
स्वमन मार लिया 'मरुभूति' ने,
वह गया वन में तज ओसरी।

(३९)

स्वपन में यह मैं नहिं जानता,
जब कभी 'वरुणा' कहती मुझे,
वह प्रलाप वृथा मन मानता,
'वरुण' को अपमानित देखता ।

(४०)

पड़ गया 'मरुभूति' विचार में,
अजब है विधि की गति विश्व में,
विषय में मरता बन श्वान ज्यों,
अधम जीवन है इसका अरे ।

(४१)

पुरुष को वनिता न विगारती,
विचलते नर को वह थामती,
प्रसवती जननी सुत रत्न को,
जगत के हित औ अनुराग में ।

(४२)

तनिक भी उसको न विवेक है,
अधमता तजता वह है नहीं,
पुरुष ही तरुणी निज त्याग के,
रत सदा रहता बन काम में।

(४३)

समय पाकर के 'मरुभूति' ही,
'कमठ' के हित में कहने लगा,
रख विवेक सदा व्यवहार का,
विचरना तुझको अब चाहिये।

(४४)

तुम स्वयं बुध हो सब बात से,
उचित ना यह है भवदीय को,
इस प्रकार उसे कहता रहा,
पर लगा कुछभी उपदेश ना।

(४५)

पय कभी बिगड़ा सुधरे नहीं,
असत को उपदेश लगे नहीं,
मन दयामय है जिसका नहीं,
फसल निष्फल ज्यों नर जन्म है।

(४६)

विवश हो नृप को 'मरुभूति' ने,
'कमठ' का सब वृत्त सुना दिया,
कुपित हो नृप ने बुलवा कहा,
पद निरस्त पुरोहित का किया।

(४७)

नगर में तुझको रहना नहीं,
मम निदेश यही अब है तुझे,
अनुचरों तुमको यह सूचना,
अरर ! ये बहु दूषित पातकी।

(४८)

तुम करो इसको सिर-मुण्डता,
तन कुरूप करो मुख श्याम भी,
कर खरासन औ पुर में फिरा,
कर प्रवासन दो इस कुष्ठ को।

(४९)

जिस प्रकार कहा नरनाथ ने,
'कमठ' से व्यवहार हुआ वही,
नगर में फिरवा करके उसे,
त्वरित भेज दिया वन में उसे।

(५०)

कुकृत पाप कभी छिपता नहीं,
अटल सत्य कभी दबता नहीं,
करुणाभाव कहीं रुकता नहीं,
किलमवान कभी छिपता नहीं।

(५१)

'कमठ' लज्जित होकर के गया,
मिल गया ऋषि-आश्रम एक था,
वह वहीं, फिर तापस-शिष्य हो,
उटज बैठ तपः करने लगा।

(५२)

न मन में उसके करुणा बसी,
शकरकन्द कुमूल कुकन्द खा,
विपिन में फिरता तरु काटता,
कुमति संग-कुसंग मिला उसे।

(५३)

नृपति ने बुलवा 'मरुभूति' को,
नगर का गणितज्ञ बना दिया,
वह लगा रहता निज कार्य में,
समय को सुख से वह भोगता।

(५४)

नृपति से कहता 'मरुभूति' यों,
अनुज-प्रेम गया मन से नहीं,
मम सहोदर से अपराध की,
अब क्षमा, वन जाकर माँग लूँ ।

(५५)

नृपति ने उसको कर दी मना,
कमठ पास न जा वह दुष्ट है,
नृपति की यह बात न मान के,
सरल चित्त बना, वन में गया ।

(५६)

सुकुलवन्त करे पर का भला,
विमलता छिपती रहती नहीं,
बदलता मन है कुलहीन का,
लख नहीं सकता गुण और का ।

(५७)

'कमठ' की कुटिया पर आ गया,
नम गया पद में उसके तभी,
जब लखा उसने 'मरुभूति' को,
अधिक क्रोधित हो कर के उठा ।

(५८)

निकट भङ्ग-पिषाण-शिला पड़ी,
वह उठा कर दी 'मरुभूति' पे,
सिर फटा अवसान हुआ वहीं,
तज दिया वपु को उसने वहीं ।

(५९)

अधम ने वध बान्धव का किया,
तनिक भी मन में न दया रही,
डर नहीं विधि का उसको हुआ,
कर लिया भव-बंधन सर्प का ।

(६०)

विपिन में रहते मुनि आश्रमी,
यह वृतान्त सुना मुनि वर्ग ने,
पकड़ के उसकी कर ताड़ना,
फिर बहिष्कृत कानन से किया।

(६१)

'कमठ' की वन में यह दुर्दशा,
बन गया अपमानित विश्व में,
विपिन-जीव डरे उस नीच से,
अवनि-भार बना नर जन्म ले।

(६२)

सघन कानन था गिरि विन्ध्य का,
वह मरा अति रौद्र विचार में,
वह गया अहि कुर्कंठ योनि में,
भव मनुष्य गया, उस कृत्य में।

(६३)

रत निरन्तर रौद्र विचार में,
न जिसका मन भाव दयार्द्र हो,
वह मनुष्य नहीं पशु भी नहीं,
फिर यहाँ लिखना किस भाँति से ।

(६४)

इन्द्रवज्रा

हाथी बना है 'मरुभूति' का जो,
है कुञ्ज विन्ध्याचल की तराई,
है पद्म नाना सर में जहाँ पे,
राजर्षि को हस्ति वहाँ मिलेगा ।

(६५)

लिखा गया जो अविवेक से कहीं,
तथापि मेरी मति से प्रमाद से,
कभी कहीं भी त्रुटि हो चरित्र में,
महा क्षमावान्! मुझे क्षमा करें ।

★

सर्ग ३

❖

(१)

वंशस्थ

कृपा करोगे यह बाल आपका,
पदाम्बुजों में नमता प्रभात में,
पवित्र मेरी मति हो चरित्र में,
बनूँ विवेकी, विनयी 'यतीन्द्र'सा ।

(२)

द्रुतविलम्बित

मुदित थी पुर 'पोतन' की प्रजा,
वह प्रहर्षित वैभव भोगती,
निरखती ऋतुराज-स्वरूप को,
सब खुशी 'अरविन्द' नरेन्द्र से ।

(३)

वंशस्थ वृत्त

सुरम्य प्रासाद, बनी अटालिका,
नरेन्द्र बैठा परिवार--मध्य में,
दिनान्त था, भूप दिशा विलोकता,
विभाँति सन्ध्या नभ मेघयुक्त था।

(४)

विलीन होते घन को विलोका,
तभी विचारा 'अरविन्द' भूप ने,
समस्त लीला जग की असत्य है,
न पुत्र नारी धन राज्य मित्र है।

(५)

द्रुतविलम्बित वृत्त

जगत को क्षणभंगुर जान के,
बन गया मन-भाव निर्ग्रन्थ सा,
उपशमोत्थित चेतन में हुआ,
अवधि ज्ञान लिया नृप ने तभी।

पृष्ठ संख्या ४४

(६)

वंशस्थवृत्त

प्रजा जनों को बुलवा नरेन्द्र ने,
कहा तजूँ, मैं इस राज्य कार्य को,
'महेन्द्र' का हो अभिषेक शीघ्र ही,
प्रवीण है राज्य-विधान-कार्य में ।

(७)

इन्द्रवज्रा

दी थी चरों ने नृप को बधाई,
ज्ञानी तपस्वी वन में पधारे,
वाणी उन्होंकी मधुरी रसीली,
देखो उन्होंका तप ध्यान स्वामी ।

(८)

द्रुतविलम्बित

मुद हुआ 'अरविन्द' नरेन्द्र को,
जन समूह मिला पुर का सभी,
उपवने सब ही मिल के गये,
श्रमण को कर वन्दन भाव से ।

(९)

श्रमण का उपदेश सुधामयी,
पुर प्रजा सुन हर्षित भाव से,
नृपति ने कर जोड़ कहा तभी,
श्रमण का मुझको पद दीजिये।

(१०)

वंशस्थवृत्त

प्रवृत्ति को त्याग सदैव के लिए,
निवृत्ति में सौख्य अनंत जान के,
जिनेन्द्र-दीक्षा 'अरविन्द' भूप ने,
प्रहर्ष में ली 'समंतभद्र' सूरि से।

(११)

करूँ विभो! मैं जिनकल्प की क्रिया,
प्रमाद का सेवन मैं नहीं करूँ,
निदेश ले के 'समन्तभद्र' सूरि से,
चलें तभी मस्तक नाथ को नमा।

(१२)

अनेक ऊँचे तरु भूमि में खड़े,
जहाँ नदी भी बहती पवित्र थी,
विलोक निर्वद्य मही मुनीन्द्र ने,
स्वआत्म के चिन्तन में प्रवृत्ति की।

(१३)

विशाल विन्ध्याचल शृंग-श्रेणियाँ,
दिखा रही गौरव तुङ्ग भाव से,
वनेन्द्र गर्जारव के प्रकोप से,
महान होता भय जीव मात्र को।

(१४)

वनस्थली में फलयुक्त वृक्ष थे,
जलाशयों में नवजात पद्म थे,
पलाश जाम्बू तरु थे कदम्ब भी,
अशोक के पादप भी अनेक थे।

(१५)

प्रफुल्ल थी पादप से लतावली,
विहंग का था कलनाद राग में,
सुगंध थी चंदन वृक्ष चारु की,
अनेक पौधे वट थे रसाल भी।

(१६)

गजेन्द्र के, यूथ स्वच्छंद घूमते,
मृगेन्द्र के यूथ वहाँ निशंक थे,
स्वच्छंदता से फिरते प्रहर्ष हो,
द्रुमावली को चरते प्रमोद से।

(१७)

मुनीन्द्र के तो वनजंतु मित्र थे,
विलोक निर्दोष मही गिरी गुहा,
तपे तपस्वी, तन का न मोह था,
जिनेन्द्र-भाषी तप साधना करें।

(१८)

इन्द्रवज्रा

आया वहाँ 'सागरदत्त' श्रेष्ठी,
देखी वहाँ की सुविधा अनूठी,
दी थी अनुज्ञा अब यान छोड़ो,
वृक्षावली सुन्दर छाँह भी है।

(१९)

वंशस्थ

विदेश यात्रा व्यवसाय के लिए,
सुयान में विक्रय वस्तु थी भरी,
तजे सभी वाहन भारवाहिका,
पहेरि थे जागृत और सो रहे।

(२०)

पहेरि बोले बजवा नगारा,
प्रयाण - वेला अब हो गई है,
सचेत हों यान सजो प्रवासियों,
प्रवास लंबा गिरि का रहा अभी।

(२१)

प्रवास था, यात्रिक का प्रभात में,
मुनीन्द्र देखे उपयुक्त है समा,
विचार ऐसा करके चले तभी,
अग्राम्य विंध्याचल का विहार था।

(२२)

चले बटोही पथ-कष्ट से थके,
प्रवाहिता थी सरिता मिली उन्हें,
रुके सभी थे जलपान के लिए,
तृषा मिटाई वृषभादि अश्व की।

(२३)

अशोक छाया सुख से खड़े हुए,
मुनीन्द्र को 'सागरदत्त' ने लखा,
तपोधनी जान, गया समीप में,
विवेकधारी फिर सेठ ने कहा।

(२४)

पधारना है गुरु कौनसी दिशा,
कृपा करेंगे मुझपे दयानिधे !
प्रणाम मेरा पदपद्म पंक्ति में,
महान है कष्ट प्रवास में विभो !

(२५)

सदा विहारी गुरुदेव आप हैं,
सुखा दिया है तन को न मान के,
मुनीश बोले उपयोग साध के,
प्रयाण अष्टापद तीर्थ के लिए।

(२६)

कथा सुनाओ इस तीर्थ की मुझे,
मनुष्य की सार्थकता सुप्राप्त हो,
कृपा करो नाथ ! चलो सुसंग है,
सुलाभ होगा उपकार कीजिये।

(२७)

वसन्ततिलकावृत्त

बोले तभी श्रमण 'सागरदत्त' से यों,
आदीश थे अवनि में, घर पुत्र सौ थे,
चक्री बने, भरत जो सबसे बड़े थे,
निन्नाणु पुत्र प्रभु से तब ली प्रव्रज्या।

(२८)

अष्टापदोज्ज्वल गिरीवर तीर्थ थापा,
चैत्यों रचे भरत ने, जिन-बिम्ब थापे,
सौन्दर्यभाव मय शिल्पकला अनोखी,
मिथ्यात्व मोह हरती अवनी वहाँ की।

(२९)

उपजातिवृत्त

चौवीस तीर्थङ्कर की अनूठी,
बनी मणि से प्रतिमा प्रभु की,
इन्द्रादि विद्याधर पूजने को,
सदैव आते कर भक्ति जाते।

(३०)

संसार में मानव-धर्म क्या है,
करो समाधान मुनीन्द्र ! मेरा,
होगा समुद्धार तभी हमारा,
सुपुण्य से ही शुभयोग आता ।

(३१)

ना देव कोई अरिहन्त सदृश,
न मन्त्र कोई नवकार जैसा,
देखा नहीं देव परोपकारी,
अनेक प्राणी जिसने तिराये ।

(३२)

मिथ्या सभी है जन-प्रीति झूठी,
नहीं रहेगी यह नित्य माया,
अज्ञान में मानव सोचता है,
कुटुम्ब मेरा तन द्रव्य मेरा ।

(३३)

आत्मा दुखाना पर की कभी ना,
वदो न मिथ्या, करना न चोरी,
त्यागो पराई ललना सदा ही,
निधान खर्चो नित सप्त भूमि।

(३४)

द्रुतविलम्बित वृत्त

प्रवचनामृत 'सागरदत्त' पी,
मन विकल्प मिटा उसका सभी,
समझ के उपकार मुनींद्र का,
व्रत लिया तब श्रावक-धर्म का,

(३५)

नित नया उपदेश मुनीन्द्र का,
सुन, मुदा मन यात्रिक लोग भी,
ग्रहण वे करते व्रत आदि को,
दृढ़ बने सब ही जिन धर्म से।

(३६)

ठहरते चलते गिरि विन्ध्य में,
निरख 'पद्मसरोवर' की छटा,
समतलावनि को लख सेठ ने,
तज दिये निज यान वहीं सभी ।

(३७)

निरख भूतल शुद्ध मुनीन्द्र ने,
अलख स्थान लिया वट छाँह का,
सघन थी वह छाँह प्रमोदिनी,
लग गये मुनि योग समाधि में ।

(३८)

जब पड़ाव व्यवस्थित था हुआ,
शिविर-रोहण भी त्वर हो चुका,
वृषभ अश्व थकान निवारते,
नर लगे निज यान–सुधार में ।

(३९)

लग गये कुछ भोजन कार्य में,
कुछ थकान हरे तरु छाँह में,
बिपिन में कुछ इंधन ढूँढते,
चर गये जल को भरने तभी।

(४०)

सलील-वाहक पाल तड़ाग की,
जब चढ़े, सुन ली गज गर्जना,
लख वहाँ पर हस्ति - समूह को,
सब डरे छिपते तरु आड़ में।

(४१)

श्रमिक यात्रिक देख रहे वहाँ,
कमलयुक्त सरोवर रम्य था,
हथिनियाँ अवगाहन में लगी,
जल क्रिया करती द्विय-संग थी।

(४२)

चपल सूँड भरी जल छाँटती,
करिणियाँ अवगाहन में लगी,
जल तरंग सरोवर की बढ़ी,
जल-क्रिया करती द्विप-संग में।

(४३)

कलभ भी, अति चंचल सूँड से,
सलिल को करिणी पर छाँटते,
कमल की कलियाँ भयभीत थीं,
अलि गये हमसे तज प्रेम को।

(४४)

गज-प्रिया अपने सुत गात पे,
सलिल से भर सूँड उछालती,
जन समूह विलोक गजेन्द्र ने,
अधिक क्रुद्ध हुआ गज था चला।

(४५)

जन जहाँ स्थित थे उस ओर हीं,
करि अनुक्रम से बढ़ता गया,
लख उसे जन व्याकुल हो गये,
छिप गये कुछ औ, भगने लगे।

(४६)

शकट रावटियाँ करि भाँजता,
शकट-रक्षक भी वन में भगे,
सकल यात्रिक सङ्कट में पड़े,
अधिक चिन्तित 'सागरदत्त' था।

(४७)

इस सरोवर के करि यूथ ने,
शिविर की कर दी, बहु दुर्दशा,
वह विचार करे किस युक्ति से,
बच सके जनयान गजेन्द्र से।

(४८)

यह उपद्रव देख मुनीन्द्र ने,
अचल ध्यान किया गज सामने,
करि हुआ स्थिर पादप ज्यूँ वहीं,
लख रहे सब यात्रिक दूर से ।

(४९)

गज विचार करे यह कौन है ?
भय नहीं मुझसे इसको जरा,
यह कहीं पर था मुझसे मिला,
कर रहा इस भाँति विचार था ।

(५०)

करिणी भी स्थिर होकर देखती,
गत हुआ मद क्रोध गजेन्द्र का,
यह मनुष्य पवित्र महान है,
पति हुआ स्थिर देख इसे यहाँ ।

(५१)

श्रमण ने तब जान लिया उसे,
गज बना अब शान्त महान है,
हित करूँ इसके पशु-जन्म का,
विपिन में पशु योनि इसे मिली।

(५२)

वंशस्थ

मुनीन्द्र बोले 'अरविन्द' भूप हूँ,
मिले 'हरिश्चन्द्र' विभो मुझे तभी,
स्वराज्य को त्याग, विरक्त मैं बना,
मिलाप तेरा सहसा हुआ यहाँ।

(५३)

स्वच्छंद घूमे ! वन में गजेन्द्र तू,
वशा मिली है तुझको सुपांचसौ,
मनुष्य का पूर्व सुजन्म खो दिया,
अभी तुझे शांति मिली न है यहाँ।

(५४)

अपूर्व जातिस्मरणात्म था हुआ,
गजेन्द्र देखे भव – पूर्व आपका,
मनुष्य मैं था 'मरुभूति' नाम का,
सुसान्त्वना दी करि को मुनीन्द्र ने ।

(५५)

द्रुतविलम्बित

फिर कहा अब तू पशु-योनि में,
न तुझसे अब धर्म-क्रिया बने,
हृदय से व्रत की कर साधना,
व्रत सुने करि ने मुनिराज से ।

(५६)

करि समीप खड़ी करिणी वहाँ,
वह वहीं पर मूर्छित हो गई,
निरखती अपने भव पूर्व को,
प्रथम थी 'वरुणा' अब हूँ वशा ।

(५७)

उपजातिवृत्त

बोले तपस्वी द्विप हस्तिनी को,
वृथा तुम्हारा अनुताप सारा,
कोई न साथी तन भी वृथा है,
असार संसार विमोह वाला।

(५८)

उपेन्द्रवज्रा

होगा समुद्धार तभी तुम्हारा,
प्रमाद त्यागो विषयादि छोड़ो,
तापो तपस्या वन के बिहारी,
विडम्बना है पशु-योनियों में।

(५९)

देखा चमत्कार मुनीन्द्र का था,
वहाँ सभी यात्रिक आ गये थे,
पादाम्बुजों में नत हो गये थे,
प्रसन्न आत्मा सबकी बनी थी।

(६०)

देखो बचाई जन-जान माया,
मुनींद्र का है उपकार भारी,
राजी हुआ 'सागरदत्त' आया,
प्रणाम पादाम्बुज में किया था।

(६१)

द्रुतविलम्बित

गज गया वन में व्रत सोचता,
अब मुझे चलना मुनि मार्ग से,
लग गया गज था तप-ध्यान में,
भव-सुधार करें पशु-योनि का।

(६२)

वह निरन्तर ही यति भाव से,
विचरता बचता अतिचार से,
विटप के पत खा परिपक्व जो,
उदर पोषण था करता सदा।

(६३)

अलग ही रहता निज यूथ से,
तन तपा करके उपवास से,
विचरता वन में उपयोग से,
वपु बना कृश था उस हस्ति का ।

(६४)

जल कहीं लख उष्ण चट्टान का,
समझ पीवत प्रासुक नीर को,
वह सदा रहता तप ध्यान में,
करिणि भी व्रत में दिनरात थी ।

(६५)

दिवस तीन हुए उपवास में,
जल बिना उसका मन खिन्न था,
फिर रहा वन में जल खोजता,
अति तृषार्दित व्याकुल हो गया ।

(६६)

गगन-मण्डल में अति उष्णता,
तपन-काल बड़ा बरबण्ड था,
न जल शुद्ध मिला उसको कहीं,
वह अजान सरोवर में गया।

(६७)

वह पिपासु फँसा जल-पङ्क में,
निकलना न बना उस हस्ति से,
विवश हो मन में वह सोचता,
अजब है गति कर्म विचित्र की।

(६८)

'कमठ' भी मर के उस कुञ्ज में,
बन गया अहि कुर्कट जाति का,
विष भरा फिरता नभ-कुञ्ज में,
लख उसे डरते वन–जीव भी।

(६९)

उस सरोवर में अहि आ गया,
घुस गया गज था यह देख के,
यम-स्वरूप हुआ प्रतिशोध से,
बन गया गज आहत दंश से।

(७०)

स्वतन का अवसान विचार के,
मन समाधि तभी द्विप सोच लीं,
स्मरण था करता नवकार का,
तज दिया वपु को उस हस्तिने।

(७१)

वंशस्थ

गया सहस्रार अमर्त्य लोक में,
वरायु है सत्तर सागरोपमा,
गजेन्द्र देवावधिज्ञान से वहीं,
विलोकता था भव पूर्व आपका।

(७२)

सुरम्य विंध्याचल की वसुन्धरा,
विनोद की भूस्थली थी प्रहर्षिता,
रहा वशा यूथ जहाँ प्रमोद में,
विलोकता था 'वरुणा' वशा कहाँ।

(७३)

वनों वनों औ सर में विलोकता,
वियोग मेरा सहती तपस्विनी,
मिला नहीं मैं उसको कहीं कभी,
प्रवास आहार तजा तभी सभी।

(७४)

थी हस्थिनी वो परिणाम शुद्धि,
छोड़ा यहाँ काय वियोगिनी ने,
द्यौं में गई है करके तपस्या,
देखूँ उसे मैं वह है कहाँ पे?

(७५)

इन्द्रवज्रा

ऐसे विचारे फिर स्वर्ग देखे,
सुरालयों की रमणीय भूमी,
देवांगना की नव मण्डली में,
विलोकता देव-विमान सारे।

(७६)

है पुष्पशय्या सुपराग-युक्ता,
उत्पन्न होते सुर हैं उसी में,
है केलि क्रीड़ा सुर किन्नरों की,
वे पूर्व पुण्यत्व नितान्त भोगे।

(७७)

शृंगार-शोभा वपु रम्य होते,
इच्छा करे जो परिपूर्ण होती,
उद्यानमाला मधुमास शोभा,
घूमे हमेशा सुर वाटिका में।

(७८)

हैं देव-देवी सुविमान बैठे,
आमोद-केलि करते अनोखी,
कैसी सुरों की रमणीय भूमि,
देवेन्द्र का शासन है अनूठा।

(७९)

उपजातिवृत्त

आनंद लेते नित नाट्य का वे,
उसी सभा में सुर इन्द्र बैठे,
आयुष्य जाता बहु काल बीते,
न ज्ञान होता सुख में उन्हों को।

(८०)

क्रीड़ा करे वे नित, मोदकारी,
अनेक देवी निज देवता से,
ईशान स्वर्गीय प्रसाद भारी,
जिनेन्द्र के बिम्ब जहाँ अनूठे।

(८१)

वंशस्थवृत्त

अमर्त्य, ईशान विमान देखता,
पता लगा था सुरवास में वशा,
बनी विषण्णा निज धाम वास में,
निजांग प्रत्यङ्ग प्रसन्न है नहीं ।

(८२)

उपजातिवृत्त

जो हस्तिनी का अमरी बना है,
विलोकती है भव पूर्व का जो,
था पूर्व में प्रीतम हस्ती मेरा,
नहीं दिखाता सुर मंडली में ।

(८३)

आशा लगा के करती प्रतीक्षा,
गजेन्द्र-आत्मा मुझको मिलेगी,
आनन्द होगा मुझको उसी में,
गजेन्द्र ने भी यह वृत्त जाना ।

(८४)

मेरा लगा है अनुराग प्यारा,
इसीलिए तो रहती अकेली,
ईशान–लोकामर से सदा ही,
विरक्त है वो अमरी सुरूपा।

(८५)

आया सहस्त्रार सुलोक से,
गया उठा के उसको वहाँ से,
स्वर्गीय इच्छा परिपूर्ण – हेतु,
सुकाल दोनों सुख में बिताते।

(८६)

द्रुतविलम्बित

सतत जीवन रौद्र विचार में,
विचारता वन में वह नाग था,
विपिन में मर, धूमप्रभा गया,
अधिक भेदन–छेदन–वेदना।

इन्द्रवज्रा

आगे मिलेंगे नगदेव दोनों,
अज्ञानता के वश नाग भी तो,
लेगा सदा ही दुःख की निशानी,
आगे क्षमाशील अमर्त्य होगा।

*

सर्ग ४

*

(१)

शार्दूलवृत्त

देखी पूर्व विदेह की विजय है सूकच्छ के नाम की,
है वैताढ्य गिरीन्द्र मध्य 'तिलका' नामापुरी भासती,
है विद्युत्गति भूप 'खेचरपति' विद्या-विनोदी सदा,
तेजस्वी रणवीर शत्रु-विजयी कौटिल्य नीतिज्ञ था।

(२)

प्रमुदितवदना

सुकनक 'तिलका' है पट्टराज्ञी,
जिन-वचन-पिपासोपासिका है,
नित प्रति वह धर्माराधना में,
नित प्रति निधनों को दान देती।

(३)

वसन्ततिलकावृत्त

जो पूर्व सञ्चित किया उस पुण्यश्री से,
नाना प्रकार महिषी सुख भोग भोगे,
गार्हस्थ्य-धर्म-कुशला विनयादियुक्ता,
भूपाल के हृदय की प्रिय वल्लभा थी।

(४)

उपजातिवृत्त

देवोपयोगी सुख भोग-भोगी,
च्यवा सहस्रार सुलोक में से,
था देव आया बहु पुण्यशाली,
तथा बनी थी महिषी सुगर्भा।

(५)

आधानवाली ललना सदा ही,
विवेक पूरा रखती उसीका,
त्यों राजमाता रहती सदा थी,
प्रसन्न होते लख दास-दासी।

(६)

थी स्वामिनी से कहती सदा ही,
न कष्ट देना तनको जरा भी,
ऊँचे चढ़ो ना, परिहास त्यागो,
स्वपाद-संचार शनैः शनैः हो ।

(७)

वे गर्भ की ही प्रतिपालना में,
विशिष्ट बातें चरियाँ सुनाती,
होती उन्हींमें नित धर्म-चर्चा,
सुकाल रानी सुख से बिताती ।

(८)

वेला अनूठी शुभ चिह्न वाली,
सुरम्य आकाश बना विभा से,
प्राची दिशा में नव सूर्य जैसा,
सुसूनु जन्मा रनिवास में था ।

(९)

आनंद छाया 'तिलकापुरी' में,
पुराङ्गना मंगल-गीत गाती,
बाजित्र बाजे नट-नृत्य होता,
नरेश के द्वार अनङ्ग छाया।

(१०)

वंशस्थ

चरों-चरी हर्षित भाव बोले,
कुमार का जन्म हुआ प्रभाते,
अनाश्रितों ने बहु दान पाया,
तजे गये तस्कर, हर्ष से थे।

(११)

द्रुतविलम्बित

नववधू पुर की अनुराग में,
कुँवर का मुख-चन्द्र विलोकती,
निरख के मुख-पंकज मोद से,
मन उमङ्ग सुमङ्गल गीत थे।

(१२)

पुरप्रजा-हित न्याय-प्रवीरण हो,
किरणवेग प्रभा, प्रसरो मही,
चरण शोभित हो रिपु मौलि से,
कुशल मंगल हो इस राज्य में ।

(१३)

मोदक

राज-निकेतन सुन्दर दर्शित,
रम्य गवाक्ष सुराज्ञि विलोकत,
है तिलकापुर दृश्य मनोहर,
नन्दन खेलत है विच आँगन ।

(१४)

तेज अनूप मनोहर वल्लभ,
लक्षरण है शुभ शासक पालक,
बुद्धि विचक्षरण बालक है मम,
पूर्ण मनोरथ है अब तो सब ।

(१५)

द्रुतविलम्बित वृत्त

निपुण है निज शासन-कार्य में,
विनयवान विवेक सुधीर है,
पुर-प्रजा-जन-वल्लभ है बना,
अब विवाह करें प्रिय पुत्र का।

(१६)

नृपति को महिषी कहती रही,
किरणवेग कुमार प्रवीण है,
कुशल है रण में मति धीर है,
विजय प्राप्त करें अरि सैन्य में।

(१७)

सुत समान सुयोग्य कुमारिका,
लख विवाह-महोत्सव को किया,
वह बनी युवराज प्रिया तथा,
फिर बनी महिषी पद सेविका।

(१८)

सहनशील स्वभाव विनम्र थी,
प्रणयिनी प्रिय थी युवराज की,
मति मनोहर थी मृदुभाषिणी,
मदन धाम बना, निज धाम था।

(१९)

उपजातिवृत्त

पद्मावती संग कुमार खेले,
प्रहर्ष क्रीड़ा शतरंग की थी,
अर्द्धाङ्गिनी का जब दाव होता,
न जीत मेरी यह आपकी है।

(२०)

ऐसा मनोरंजन नित्य होता,
सदैव दोनों वन-कुञ्ज जाते,
दोनों विनोदी, नभ के विहारी,
सुतीर्थ-यात्रा करते यथेच्छा।

(२१)

थी रम्य 'विद्युतगति' न्यायशाला,
प्रजाजनों को हित न्याय देती,
अन्यायियों को मिलती सजा थी,
महीप का शासन इन्द्र जैसा।

(२२)

दी थी सभा में चर ने बधाई,
अभी पधारे वन में तपस्वी,
जो है 'श्रुताचार्य' मुनीन्द्र ज्ञानी,
प्रभाव देखा उनका अनोखा।

(२३)

भूपाल - सन्देश फिरा पुरी में,
पुरी–जनों में अति हर्ष छाया,
सौभाग्यशाली 'तिलकापुरी' थी,
प्रणाम के हेतु चले सभी थे।

(२४)

यों सैन्य सेनापति ने सजाया,
नरेन्द्र आरूढ़ गजेन्द्र पे हो,
ले पौरवासी जन को चले थे,
उमंग छाई रनिवास में भी।

(२५)

उद्यान आई नृप की सवारी,
विभाँति पक्षी चहके वहाँ थे,
कल्याणकारी मुनि की सुवाणी,
परोपकारी निज स्वार्थ त्यागी।

(२६)

देखो पधारे, अपने हितैषी,
प्रफुल्लितोद्यान दिखा रहा है,
भूपाल आये मुनि पास में ही,
अशोक नीचे मुनिनाथ बैठे।

(२७)

भूपाल बैठा कर जोड़ दोनों,
सुधा भरी थी मुनिराज वाणी,
संसार के दृश्य सभी वृथा है,
यहाँ वहाँ मानव दुःख पाता।

(२८)

प्रमुदितवदना

तन धन सब हैं मिथ्या दिखाते,
गज रथ सुत स्त्री ना साथ जाते,
अधिकृत रह जावेगी धरा भी,
मत कर ममता रे मानवी तू।

(२९)

उपजातिवृत्त

सन्देश प्यारा मुनि का लगा था,
यथार्थ माना परिषद्-जनों ने,
विद्युत्गति भूप विचारते थे,
कुमार को मैं अब राज्य दे दूँ।

(३०)

द्रुतविलम्बित

समय है अब मैं अपना करूँ,
विरतिभाव बिना कुछ है नहीं,
इस प्रकार नरेन्द्र विचारते,
जगत की ममता सब व्यर्थ है।

(३१)

उपजातिवृत्त

भूपाल की यों सुन बात सारी,
प्रजाजनों में अति हर्ष छाया,
रक्षा करेगा युवराज राजा,
प्रवीण है शासन-कार्य में भी।

(३२)

वैराग्य रागी नृप को विलोका,
प्रजाजनों ने उनको बधाये,
चारित्र संगी बन के महीप,
प्रसन्न बोले मुनि धर्मलाभ !

(३३)

वसन्ततिलकावृत्त

राजर्षि ने पथ लिया बनवास का जो,
फूले फले विटप थे जिसमें अनेकों,
घूमे जहाँ अधिक हिंसक जीव भी थे,
नाना विहंग करते कलनाद प्यारा।

(३४)

राज्यासने किरणवेग हुए सुशोभित,
आये सभी मिलन को नृप पार्श्ववर्ती,
सारी प्रजा मुदित थी 'तिलकापुरी' की,
सानन्द उत्सव मना निज नाथ माना।

(३५)

पद्मावती सतत भोजन दान देती,
श्रद्धा अटल थी जिन धर्म में भी,
उल्लास भाव करती जिनराज - पूजा,
रानी दयार्द्र मन थी विनता सुशीला।

(३६)

शृंगार–भूषित प्रिया, नृप-सद्म आती,
भूपाल - संग करती कमनीय क्रीड़ा,
जाती कभी उपवने नृप संग रानी,
आमोद केलि लखती वन-पक्षियों के ।

(३७)

त्रोटक

नृप को कहती प्रिय राज्ञि वहाँ,
मलयानिल शीतल है चलता,
कुसुमों पर ये तितली उड़ती,
फिरती लखती नव पुष्प–कली ।

(३८)

चलिये अब प्रीतम केतन को,
बहु भाँति प्रमोद विनोद हुआ,
रवि पश्चिम डूब रहा अब तो,
रजनीश सुशोभित आवत है ।

(३९)

तब प्रीतम संग चली सुमुखी,
शुभ भाव भरे निज धाम गयी,
जब भोर हुआ नृप के मन में,
समरे गुरुदेव सुधर्म मुदा।

(४०)

मोदक

शासन कार्य निरीक्षण होता,
नित्य प्रजाजन के हित में ही,
थे सुखसागर में पुरवासी,
भूप मिला उनको अवतारी।

(४१)

पृथ्वी

विशिष्ट जिनदेव की कथित रम्य आराधना,
विचार करता महीपति विराज एकान्त में,
असार जग है अरे क्षणिक, मुग्ध तू क्यों बना,
हुआ तनुज योग्य है अब स्वराज्य दूँ मैं उसे।

(४२)

वसन्ततिलका

राज्याभिषेक करके सुत का पुरी में,
सम्बोध भूप कहते पुर की प्रजा को,
राज्यासने किरण तेज प्रतापधारी,
रक्षा सदैव सबको मति से करेगा।

(४३)

द्रुतविलम्बित

तुम परस्पर प्रेम विनोद में,
विचरना सुख से नृप ने कहा,
तज तभी ममता मन की सभी,
लग गये नृप थे तप ध्यान में।

(४४)

मोदक

कानन से चर आ कर बोला,
नाथ ! महा मुनिराज पधारे,
संयम निर्मल पूर्ण तपस्वी,
है पर के हित उग्र विहारी।

(४५)

वन्दन हेतु गये नृप रानो,
ले कर के पुर की जनता को,
चित्त प्रसन्न उमङ्ग सभी का,
भूप प्रणाम करे मुनियों को ।

(४६)

थी जनता मुनि सन्मुख बैठो,
उत्सुक थी परिषद् मुनि बोले,
त्याग बिना सब भूलभुलैया,
है जग की क्षणभंगुर माया ।

(४७)

मानव-जोवन उत्तम मानो,
मुक्ति नहीं इसके बिन जानो,
कर्मन की गति है अति न्यारी,
खेल रहे सब आँख- मिचौनी ।

(१२)

चामर

गीत गावती सहेलियाँ तथा वधावती,
राज-पुत्र – जन्म पर्व को मुदा मनावती,
धन्य धन्य है 'शुभङ्करा' सुभूति राजती,
'वज्रनाभ' नाम राजमण्डली प्रकाशती।

(१३)

'वज्रनाभ' संग में वयस्क खेल खेलते,
अङ्ग में उमङ्ग की तरङ्ग की सुहावनी,
खेल खेल में प्रवीण शास्त्र शस्त्र में हुए,
'वज्रवीर्य' का प्रसन्न चित्त था कुमार से।

(१४)

वंशस्थ वृत्त

विभाति शोभा वर बंग देश की,
महा प्रतापी नृप 'कान्तचन्द्र' था,
विवाह-योग्या 'विजया' सुता हुई,
अमात्य से भूपति ने कहा तभी।

(१५)

सुयोग्य है नन्दन वज्रवीर्य का,
'शुभङ्करा जा नृप को मनाइये,
सुअंगजा है नृप 'कान्तचन्द्र' की,
सुभेट कर्ता युवराज को मुदा।

(१६)

'शुभंकरा' आकरके अमात्य ने,
वृतान्त सारा नृप को सुना दिया,
सुप्रार्थना पत्र दिया नरेन्द्र को,
पढ़ा उसे था नृप ने प्रसन्न हो।

(१७)

लिखा हुआ था अति नम्रभाव में,
महान हैं आप, बनी रहे कृपा,
विवेकिनी है 'विजया' सुता उसे,
प्रदान कर्ता तव पुत्र को मुदा।

(१८)

नरेन्द्र ने मान दिया अमात्य को,
विवाह स्वीकार लिया कुमारका,
मुहूर्त भी उत्तम आ गया तथा,
अमात्य ने स्वीकृति ली नरेन्द्रसे।

(१६)

अमात्य आया फिर बंग देश को,
सुनी बधाई नृप कान्तचन्द्र ने,
कुटुम्ब में मोद विनोद छा गया,
विवाह की मंगलपत्रिका लिखी।

(२०)

बिवाह रम्योत्सव भूप ने किया,
विवाहिता थी 'विजया' बनी मुदा,
विवेकश्री सी गुणशील भूषणा,
विभाँति भोगे सुख वज्रनाभ से।

(२१)

विनोद-केली करने कभी-कभी,
प्रसन्न चित्ता 'विजया' निकेत से,
सुकुञ्ज जाती युवराज संग में,
विहंगलीला लखती ललाम थी।

(२२)

मन्दाक्रान्ता

आये ज्ञानी मुनिवर वन में यों कहा था चरों ने,
राजा रानी सुत जन 'विजया' साधु के पास आये,
पादों में वन्दन कर मुनि के, सर्व बैठे वहाँ थे,
वाणी जानी, 'श्रुतधर' मुनि की, आत्म उत्थान वाली।

(२३)

शृङ्गारिणी

क्रोध को मान को लोभ को मारिये,
कर्म के द्वंद्व में, चित्त को जीतिये,
शान्ति के धाम में सान्त्वना दीजिये,
ज्ञान से आत्म के तत्व को शोधिये।

(२४)

स्त्रग्धरा

चौरासी लक्षयोनी जनम मरण की वाटिका है विचित्रा,
आते जाते उसी में व्यथित बन तथा रूप धारे अनेकों,
वे प्राणी नित्य भोगे शुभअशुभ फलों को व्यथामें सदा ही,
कोई है पुण्यशाली वह भविजन को रम्य संदेश देता।

(२५)

मालिनी

सुन कर मुनि वाणी आत्म-उद्धार वाली,
नृपति-मन विचारे सत्य है विश्व झूठा,
श्रमण-शरण लेना है मुझे त्याग माया,
जनम सफल होगा शुद्ध चारित्र पालूँ।

(२६)

वंशस्थवृत्त

स्वराज्य त्यागा मुनिवृत्ति में लगे,
बना लिया जीवन वज्रवीर्य ने,
प्रजाजनों को नृप ने कहा तभी,
प्रजा हितैषी अब वज्रनाभ है।

पृष्ठ संख्या १०१

(२७)

वसन्ततिलकावृत्त

भूपाल को लख विरागमयी सदा ही,
रानी करे तपक्रिया अरु देव-पूजा,
आत्मा पवित्र करती शुभ भावना से,
उत्कृष्ट भाव रखती रहती व्रतों में।

(२८)

चामर

वज्रनाभ भूप शुभ्र कीर्तिवान मान के,
और भूप दास थे बने अनेक आपके,
था प्रचण्ड वीर सैन्य साज चक्रवर्ति सा,
थी शुभङ्करी प्रजा पवित्र प्रेम भाव से।

(२९)

वज्रनाभ भूप ने सुपुत्र वज्रवीर्य को,
जान के पराक्रमी प्रवीण शस्त्र शास्त्र में,
राज्य का विशाल भार सौंप पुत्र को तभी,
भूप थे विराग में रमे पवित्र भाव से।

(३०)

चित्र लेखा

ज्ञानी क्षेमङ्कर जिनवर उद्यान में थे पधारे,
देवों ने भी समवसरण को जो रचा था अनूठा,
यों वृक्षों पल्लवित सब हुए, कुंज के जीव भी तो,
देवों का आगमन गगन से यान आते दिखाते।

(३१)

वंशस्थ

सुनी चरों की यह बात भूप ने,
प्रजाजनों को कहला दिया तभी,
शुभङ्करा के वन में जिनेन्द्र है,
प्रणाम के हेतु अभी चलो सभी।

(३२)

सजी अनूठी चतुरंग सैन्य को,
नरेन्द्र आरूढ़ हुए गजेन्द्र पे,
उमङ्ग भारी युवराज संग में,
नरेन्द्र के चित्त पवित्र भावना।

(३३)

शुभङ्कूरा की जनता प्रहर्ष में,
प्रभूत शृंगार सुभायमान था,
नरेन्द्र के संग चली उमङ्ग से,
पौरांगना मंगल गीत गावती।

(३४)

चित्रलेखा

आया भूपाल प्रभुचरण को भेटने को मुदा से,
शोभा देखी समवसरण की रम्य आमोद वाली,
वेदी-पार्श्वे अतिशय प्रभु के दिव्य चौतीस राजे,
थे इन्द्रों चौंसठ सुर-सुरियों संग स्वस्थान बैठे।

(३५)

रे रे ! माया क्षणिक जगत की मुग्ध होना वृथा है,
देखो, संसार विकट वन है त्याग के जो चलेगा,
नित्यानन्दी बन कर समता भाव में जो रमेगा,
पावेगा शासन शिवपद का मोह-वैरी हटा के।

(३६)

आशा-दूती चपल प्रबल है फाँदती प्राणियों को,
आगे दौड़े वश कर मन को, लूटती पुण्य राशी,
भारी है चार प्रबल अरि जो जीव को दुःख देते,
सद्भावों में विचर समझ के विश्व झूठा विनाशी।

(३७)

चामर

मालकोश में सुदेशना सुधा जिनेन्द्र की,
पी उसे सुरेन्द्र मर्त्य की तृषा गई सभी,
जीवमात्र तृप्ति में हुआ सुयोग्य जो मिला,
बार बार भूप को प्रमोद भावना जगी।

(३८)

प्रहर्षिणी

वाणी मंगलमयी, सुनी भूप सोचे,
दीक्षा लूँ अब जिनेन्द्र से त्याग माया,
बैठा मान अपना सभी, है न मेरा,
देदूँ योग्य युवराज को राज्य सारा।

पृष्ठ संख्या १०५

(३९)

मन्दाक्रान्ता

आत्मार्थी का मन सरल होता सदा है दयावान्,
ना औरों के अवगुण लखे, नित्य देखे स्वयं को,
वो आत्मा है परम पुरुषों में महा पुण्यशाली,
मैं भी तो हूँ मनुज-भव में देह मेरी सुधारूँ।

(४०)

चामर

वज्रनाभ भूप ने जिनेन्द्र पास में वहीं,
संयमी बने प्रसन्न चित्त से विराग लें,
शुक्ल ध्यान से सुज्ञानवान पूर्ण थे बने,
योग्यता यतीन्द्र सी बढ़ी मुनीन्द्रराज की।

(४१)

वंशस्थवृत्त

जिनेन्द्र आज्ञा मुनिराज मान के,
तपस्थली की रमणीय भूमि में,
करें तपस्या अवधूत योग से,
नहीं उन्हें थी ममता शरीर की।

(४२)

लतावली के नव पुष्प पे अली,
विहंग थे कूजित कुञ्ज-मध्य में,
रसाल-जांबू तरु थे कदम्ब के,
सुनीर था निर्भर नादयुक्त था।

(४३)

चामर

नाग जीव था बना 'कुरंग' भिल्ल नाम का,
नित्य रक्त हाथ चित्त रौद्र भाव में रमे,
व्याघ्र-छाल ओढ़ के कमान-युक्त घूमता,
मारता अनेक जीव बाण लक्ष्य साध के।

(४४)

आ गया कुरंग प्राण घातकी विलोक के,
कुञ्ज जीव आपके बचाव हेतु भागते,
देख के कुरंग ने वहाँ मुनींद्र है खड़ा,
थे मुनींद्र ध्यान-मग्न, दृष्टि नाक पे लगा।

(४५)

बार बार दुष्ट ने मुनींद्र पे चला दिये,
बाण थे, लगे मुनीन्द्र के शरीर में तभी,
बैठ के वहीं मुनीन्द्र सर्व जीव को क्षमा,
वोसिरा दिया तभी शरीर पंचभूत का।

(४६)

चित्रलेखा

है 'नौग्रैवेयक' सुरगण धाम आनन्ददायी,
नौ में से है अति रुचिर विशाल ग्रैवेयक भा,
वे साध्वात्मा तब सुर ललितांग नामा बना था,
ये कल्पातीत अमर-गण नित्य स्वाध्याय - मग्ना।

(४७)

द्रुतविलम्बित

कुमति-वृत्ति-कुरंग किरातकी,
विपिन जीव निरंतर मारता,
वह वहाँ मर माघवती गया,
प्रतर रौरव नामक नर्क में।

प्रहर्षिणी

कर्मों की सबल सैन्य जो जीत लेता,
वे आत्मा जिन बने, महा बोधदाता,
देवों मानव तथा सभी जीव माने,
शत शत वंदन करूँ सुपादाम्बुजों में ।

*

पृष्ठ संख्या १०९

सर्ग ६

❖

(१)

शार्दूल विक्रीडित

जम्बूद्वीप विदेह प्राच्य वर दिग् की भू महा रम्य है,
तत्-मध्ये विलसत् पुराणपुर में राजा अनेकों हुए,
जो न्यायालय-पीठ है कुशलबाहू शासनाधीश का,
शोभा इन्द्रसभा समान उसकी चारों दिशा राजती।

(२)

द्रुतविलम्बित

सुखद राज्य नियन्त्रण था बना,
भय-विहीन सुरक्षित धाम थे,
नगर की जनता सुखवास में,
रत सदा रहती व्यवसाय में।

पृष्ठ संख्या ११०

(३)

वसन्ततिलका

था रम्य धाम रनिवास सुदर्शनों से,
धर्मानुराग उसमें अति ही दिखाता,
आनन्द-चित्त रहती जिनदेव सेवी,
सद्भावना हृदय में रखती सदा थी ।

(४)

द्रुतविलम्बित

वह निरन्तर ही पति–सेविका,
मुदमना रहती रनिवास में,
कुशल थी विदुषी व्यवहार में,
मनप्रसन्न नितान्त नरेन्द्र था ।

(५)

वंशस्थ वृत्त

विनोद केली रमती सदैव थी,
नरेश के सङ्ग उमङ्ग देह में,
कभी वनोद्यान नरेन्द्र सङ्ग में,
'सुदर्शना' काल व्यतीत यों करे ।

पृष्ठ संख्या १११

(६)

विमान ग्रैवेयक से च्यवा यदा,
सुदर्शना गर्भवती बनी तदा,
निकेत के रक्षक दास दासी,
सुकामना थी युवराज आवें।

(७)

वसन्ततिलका

हे नाथ ! आज रजनी सुखदा बनी है,
निद्रा मुझे कुछ लगी तब स्वप्न देखे,
जो थे यथाक्रम गिने दस चार मैंने,
थे वे प्रवेश करते मुख में सुहाते।

(८)

द्रुतविलम्बित वत्त

हृदय में बहु भाँति उमंग ले,
विनय से महिषी कहने लगी,
अति मनोहर स्वप्न मुझे लगे,
फल-प्रकाश करो इनका प्रभो।

(९)

इन्द्रवज्रा

रानी लखे स्वप्न विशिष्ट जान के,
भूपाल सोचे मम राज्य वृद्धि हो,
हे शास्त्र सामुद्रिक के विधान से,
ये स्वप्न है सूचक पूर्व पुण्य के।

(१०)

वंशस्थवृत्त

सुकान्तिवान चौदह स्वप्न-आवली,
विलोकती है जननी जिनेन्द्र की,
विभूति के पुण्य-प्रभाव से सदा,
समस्त होती अवनी पवित्र है।

(११)

सुचक्रवर्ती - जननी विलोकती,
प्रकाश - मन्दा दश-चार स्वप्न का,
प्रतापशाली प्रिय पुत्र रत्न हो,
छः खण्ड भू का बनता नरेन्द्र है।

(१२)

कुमार होगा बहु पुण्य पुञ्ज ले,
सुकोमले ! शासन का अधीश हो,
सुदर्शना ने अति ही उमंग में,
'तथाऽस्तु' स्वामिन् ! मृदुहास्य से कहा ।

(१३)

दयामयी नित्य सुराज्ञी नेम से,
करे सुगर्भोचित कार्य सर्वदा,
सदैव पूजा करती जिनेन्द्र की,
जिनेन्द्र - गीता पढ़ती प्रभात में ।

(१४)

वसन्ततिलका

शोभा पुराणपुर की सुरधाम जैसी,
आनन्द चित्त महिषी शुभ योग में थी,
जन्मा तभी अनुज था शुभ चिह्न वाला,
उल्लास अन्तपुर में प्रकटा सुहाना ।

पृष्ठ संख्या ११४

(१५)

त्रोटक

नृप के मन में अति हर्ष हुआ,
सुत जन्म महोत्सव रम्य हुआ,
पुर की ललना मिल आवत है,
शुभ गावत गीत उमंग भरे ।

(१६)

चामर

राजपुत्र-जन्म हर्ष में सभी मनावते,
बोलते विकास राज्य का विशाल हो,
हो विचारशील औ दयानिधान दीन का,
शस्त्र-शास्त्र में कुमार भूप का प्रवीण हो ।

(१७)

सर्व श्रेष्ठ देख के मुहूर्त नामकर्ण का,
भूप ने दिया 'सुवर्णबाहु' नाम पुत्र का,
गोद में लिये 'सुदर्शना' सुपुत्र रत्न को,
देखती मखेन्दु प्रेम से कपोल चूमती ।

(१८)

वंशस्थ

प्रमोद में नन्दन को रमावती,
विभांति थै थै करके हँसावती,
सुझूलना में मुद से झुलावती,
कुमार को मात सुखे सुलावती।

(१९)

इन्द्रवज्रा

भाषा सुहानी तुतली सुबोलता,
माता बुलाती, तब दौड़ अङ्क में,
आता लगाती जननी हृदे उसे,
आमोद में मात उसे रमावती।

(२०)

आवास में देख नरेन्द्र पुत्र को-
थी पूर्णमासी मुख चन्द्र की छटा,
सानन्द बाल्यावय की सुकांति में,
ले गोद में भूप विराजते मुदा।

(२१)

पंचचामर

कुमार खेलता वयस्क-संग भाँति भाँति से,
स्थली अनूप राजती सुबाल्यकाल खेल से,
प्रदेश देश की प्रजा कुमार को विलोकती,
प्रहर्ष भाव से भविष्य का नरेन्द्र जानती।

(२२)

इन्द्रवज्रा

केली प्रभा थी युवराज की वही,
आनन्द देता जन को सदैव था,
जैसे निशा वल्लभ नित्य रात्रि में,
तारागणों की तति से सुशोभता।

(२३)

स्वप्नावली सूचित राजपुत्र है,
राजा बनेगा अपना भविष्य में,
यों पार्श्ववर्ती नृप सोच आगये,
रक्षा करे वे युवराज को सदा।

(२४)

चंचला

शुभ्र कीर्तिवान है सुवर्णबाहु राज आज,
बाण, वेद, चक्रभेद शस्त्र-शास्त्र में प्रवीण,
युद्ध क्षेत्र की समस्त रीति भाँति ज्ञानवान,
भाग्यवान मानिये प्रताप सूर्य के समान ।

(२५)

पृथ्वी

दयालु युवराज को कुशलबाहु भूप ने,
सहर्ष अपना 'पुराणपुर' का दिया राज्य था,
प्रशस्त यह कार्य देख जनता करे प्रेम से,
महोत्सव उमंग मंगल महामना भाव से ।

(२६)

द्रुतविलम्बित वृत्त

कुशलबाहु नरेन्द्र विरक्त हो,
तज दिया व्यवसाय सुराज्य का,
जगत को क्षणभंगुर जान के,
लग गये निज आत्म-सुधार में ।

(२७)

पृथ्वी

तथा कुशलबाहु सदृश स्वर्णबाहु प्रभा,
निवास करती सदा, विमल भावना चित्त में,
प्रजा हित विचार श्रेष्ठ गुरुदेव औ धर्म में,
जिनेन्द्र-गुण में पुराणपुर की प्रजा लीन थी।

(२८)

वंशस्थ

सुरेन्द्र जैसा नृप भोग भोगता,
प्रचण्ड जो थी अनुशासनावली,
विशिष्ट संचालन राज्यनीति का,
नहीं कहीं शत्रु रहे प्रताप से।

(२९)

'सुनन्द' श्रेष्ठी बहु अश्व संग में,
पड़ाव डाला पुर के समीप था,
सुभेंट ले के नृप पास में गया,
नरेन्द्र पूछे उसको सप्रेम से।

(३०)

कहो ! कहाँ से, किस हेतु के लिए,
तुरङ्ग मेरे बहुमूल्य विक्रयी,
कृपा करोगे नृपराज आज ही,
विलोकिये उत्तम जात अश्व है।

(३१)

महीप आरूढ़ हुआ तुरङ्ग पे,
स्वहस्त में रास तुरन्त खींच ली,
प्रवास में वेग बड़ा विरुद्ध था,
रहा वहीं सैन्य सभी नरेन्द्र का।

(३१)

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार तुरंग तुरन्त ही,
छिप गया नृप ले बनवास में,
वह विलोमक शिक्षित था नया,
नृप लगाम तजी सर देख के।

(३३)

उतर के फिर भूपति अश्व से,
सलिल का कर पान तड़ाग में,
श्रम हरा स्थित हो तरु–छाँह में,
फिर चले, अटवी कटती गई।

(३४)

नियति भी अनुकूल सहायिका,
दिख पड़ा तब आश्रम साधु का,
उस समीप दिखा एक बाग था,
सुखद मन्द सुगन्धित वायु था।

(३५)

स्फुरण दक्षिण नेत्र हुआ तभी,
शकुन उत्तम सूचक जान के,
कर विचार गया नृप बाग में,
लख विराम किया वट-छाँह में।

(३६)

नृपति हर्षित भाव विनोद में,
कर विचक्षण दृष्टि विलोकता,
हिरण शावक क्रीड़त बाग में,
अति मनोहर आश्रम भासता।

(३७)

सजल कुण्ड बना उस स्थान में,
भर रहे जल बालक-बालिका,
विटप-सिंचन में कुछ थे लगे,
कर रहे कुछ स्नान विनोद में।

(३८)

विलसती कुटिया नवपर्ण की,
सुखद वासित थी सुमन-स्थली,
सुमन रम्य खिले कलियाँ नयी,
विटप से लिपटी वर वल्लियों।

(३९)

मरुत गन्ध सुचम्पक मोगरा,
अधिक पुष्प-गुलाब परागयुक्,
वकुल पादप बोरसलो जहाँ,
भ्रमर गुञ्जन थे करते वहाँ ।

(४०)

विचरती तरुणी इक सुन्दरी,
सुभग थी कटि कुन्तल की लटी,
विविध पुष्प-विरञ्चित केश थे,
भ्रमर-गुञ्जित-आनन-पद्म पे ।

(४१)

अलि, अरे ! अलि मस्तक पे रमे,
डर रही उनसे भय-आकुला,
लख रहा नृप पादप ओट से,
लग गया अनुराग मजीठ सा ।

(४२)

चपलता युत अङ्ग प्रफुल्ल है,
नृपति का मन मोर विचारता,
इस तपोवन में यह कौन है,
रति-सुरी-सम रूप अनूप है।

(४३)

इन्द्रवज्रा

'नंदा' कहाँ पे तुम हो ! मुझे तो,
भौंरे निकम्मे डसते सताते,
बोली सखी भी उसको हँसी से,
आती तुम्हारे तन से सुगन्धी।

(४४)

यों और भी तो कहने लगी थी,
है तापसों की करता सुरक्षा,
आवे कभी भूप सुवर्णबाहु,
तेरी सुरक्षा अलि से करेगा।

(४५)

द्रुतविलम्बित

जब कभी तुझको कहती अरे !
मम हृदे पर वार विषाद का,
न करना परिहास नितान्त तू,
मिलन भूपति का मुझको कहाँ।

(४६)

इस प्रकार परस्पर बोलती,
मदन वल्लभ को बुलवा रही,
द्वय सखी अति हर्षित भाव में,
वद रही अपनी-अपनी कथा।

(४७)

वह विनोद बसा नृप के हृदे,
क्षणिक भी उनसे न रहा गया,
प्रकट हो नृप ने उनसे कहा,
इस तपोवन में तुम कौन हो।

(४८)

लख उन्हें तब लज्जित हो गई,
हृदय में उनसे डरने लगी,
न अभिज्ञान हुआ नृपराज का,
अतिथि स्वागत भूल गई तभी।

(४९)

मन्दाक्रान्ता

हे भद्रे! क्यों तुम डर रही अल्प शङ्का न कीजे,
जो भी बातें तुम कर रही, वे मुझे भी सुनाओ,
मेरा सारा श्रम, सुन तुम्हारी कथा दूर होगा,
मेरा आना विपिन, तुमको लाभदायी बनेगा।

(५०)

द्रुतविलम्बित

निडर हो कहती तुम कौन हो,
इस तपोवन में किस हेतु से,
तव उपस्थिति जो सहसा हुई,
कर कृपा हमको बतलाइये।

(५१)

पुर पुराण जहाँ हम वास है,
सुभट हूँ नृप का तुम जानिये,
वन-निरीक्षण-हेतु प्रवास है,
सलिल - हेतु यहाँ पर आगया।

(५२)

अनुगृहीत करो इस पीठ को,
स्थित हुए नृप छाँह अशोक की,
द्वय सखी कुछ दूर खड़ी रही,
विनय से कहती अनुराग में।

(५३)

कुशलबाहु नरेन्द्र प्रताप से,
इस तपोवन में कुटिया बनी,
अथिति आश्रय आश्रम है बना,
स्थित यहाँ अब गालव है ऋषि।

(५४)

सतत ही रहते तप ध्यान में,
अलग ही रहते सबसे सदा,
नृपति ने उनसे तब यों कहा,
मुनि कहाँ पर है बतलाइये ।

(५५)

इन्द्रवज्रा

नन्दावती यों स्मितभाव बोली,
आये हुए थे मुनिराज को वे,
पन्था दिखाने उनको गये हैं,
वेला हुई है उनकी, पधारें ।

(५६)

नन्दा उन्हें यों कथनी सुनाती,
वैताढ्य में रत्नपुरी धनाढ्या,
विद्याधरों का नृप खेचरेन्द्र,
आयुष्य पूरा उनका अकस्मात् ।

(५७)

ना दे गया रत्नपुरी किसी को,
दो बन्धु थे एक सहोदरा था,
रत्नावती का कहना न माना,
आश्चर्यकारी घटना उन्हों की।

(५८)

सङ्घर्ष भारी हुय बन्धुओं में,
होने लगा था यह देख रानी,
भागी वहाँ से बनवास में थी,
आई यहाँ है असहाय हो के।

(५९)

रत्नावती है भगिनी ऋषि की,
पद्मा सुता भी वह संग आई,
देखी उसे गालव ने, यथोचित,
दे स्थान आश्वासन भी दिया है।

(६०)

आनन्द में मात सुता यहीं हैं,
दी है उन्हें भी सुविधा अनूठी,
है आज भी आश्रम में बिराजी,
आगे कथा गालव जानते हैं।

(६१)

'नन्दावती' ने फिर से कहा था,
हैं आप भूपाल प्रतीत होते,
भूपाल भी तो मृदु हास्य बोला,
स्वामी हमारा पुर धाम राजे।

(६२)

देवाङ्गना के सम कोमलांगी,
पद्मा खड़ी पद्ममुखी सलूणी,
है भाग्यवन्ती कुमरी मृगाक्षी,
अर्द्धाङ्गिनी भूपति की बनेगी।

(६३)

द्रुतविलम्बित

श्रमण एक पधार गये यहाँ,
इस प्रकार कहा उनने हमें,
नृप सुवर्ण, वरें यह सुन्दरी,
विनयवान विवेक-विलासिनी।

(६४)

शार्दूलक्रीडित

वृद्धा आश्रमवासिनी कह रही नन्दावती है कहाँ ?
ले के तू अब जल्द आव कुंवरी पद्मावती को यहाँ,
दोनों क्या करती वहाँ तुम गये ज्यादा समा होगया,
आवेंगे अब नाथ गालव ऋषि नाराज होंगे कहीं।

(६५)

द्रुतविलम्बित

इधर भूपति की मति भी लगी,
मिल गये जब नैनन चार थे,
ठहरती लखती नृप को चली,
अधिर हो निज आश्रम को अरे !

(६६)

समय पे मुनि गालव आ गये,
मिल गये सब आश्रमवासि थे,
मुनि-पदे कर वंदन प्रेम से,
कुशल है पथ का सब पूछते।

(६७)

इन्द्रवज्रा

आनन्द में गालव थे बिराजे,
नन्दा खुशी में कहने लगी थी,
आया अकस्मात् निज वाटिका में,
सामन्त कोई वर है सुहाता।

(६८)

स्वामी पधारो निज वाटिका में,
देखे उन्हें, है नृप अन्य कोई,
प्रच्छन्नता-वेश लिये छिपे हों,
नंदा चली गालव संग में ही।

(६९)

मंदा, बताती कर अंगुली से,
बैठे हुए छाँह अशोक नीचे,
बाजी अनूठा उनका सुसंगी,
कोई नहीं मानव पास में है।

(७०)

वीरत्व में वीर बली प्रभावी,
है क्रान्तिकारी तप-तेज वाला,
भूला हुआ भूप प्रतीत होता,
बाबा! हुई सत्य भविष्यवाणी।

(७१)

शार्दूल विक्रीडित

राजा को पहिचान गालव ऋषि, आशीष दी भाव से,
कन्यादान सुभेट है, विनय से बोले ऋषि भूप को,
नंदा पुष्प-सुमाल गूँथ करके लाई करों में वहाँ,
माला दी पहिना 'सुवर्ण' नृप को पद्मावती ने तभी।

(७२)

इन्द्रवज्रा

आनन्द में आश्रम के निवासी,
गांधर्व सा लग्न सभी मनाया,
की पुष्प-वर्षा उनपे सभी ने,
नन्दादि ने गीत सुराग गाये।

(७३)

आशीष दी थी मुनि ने उन्होंको,
पद्मा विवेकी विनयी सलोनी,
अर्द्धाङ्गिनी आज बनी तुम्हारी,
मेरी प्रसादी, यह कौमुदी है।

(७४)

भूपाल ने भी मुनि से कहा यों,
मैं तो यहाँ दर्शन हेतु आया,
मेरा किया स्वागत्त आपने जो,
होगी नहीं विस्मृत बात सारी।

(७५)

बोले तभी आश्रम के निवासी,
स्वामी बनी है नवपर्ण शाला,
विश्राम कीजे, सब है व्यवस्था,
सेवा करेंगे हम आपकी सौ।

(७६)

प्रहर्षिणी

बाजी ले नृपति को छिपा कुञ्ज में था,
सेना भी बन गई अघोरा वहाँ थी,
था सौदागर वहाँ, कहा अश्व अच्छा,
होगा कष्ट नृप को नहीं शोक छोड़ो।

(७७)

आओ ये पद तुरङ्ग के चिह्न देखो,
कुञ्जों में सर गिरी नदी खोज लेना,
होंगे भूपति मुदा जहाँ भी बिराजे,
होते हैं शकुन श्रेष्ठ से श्रेष्ठ जानो।

(७८)

इन्द्रवज्रा

सामन्त मन्त्री सुन बात सारी,
है जङ्गलों में फिरना जरूरी,
ढूंढे चलो कानन में उन्हों को,
सेना रवाना, बन को हुई थी ।

(७९)

कोई गुहा औ, नद ढूँढते थे,
कोई चढ़े पर्वत वृक्ष-शाखा,
भूपाल बाजी न मिले उन्होंको,
चारों दिशा लख सैनिकों ने ।

(८०)

विश्रान्त हो के कुछ लोग बैठे,
बातें करें क्या करना हमें है,
राजा नहीं औ हय भी मिलाना,
कैसे यहाँ से घर लौट जाना ।

(८१)

सामन्त बोला स्वर-ज्ञान वाला,
आगे बढ़ो भूप तुम्हें मिलेंगे,
जाना दिशा उत्तर की सभी को,
शङ्का करो ना तज दो निराशा ।

(८२)

यों सैनिकों ने सुन बात सारी,
भेरी बजा शीघ्र प्रयाण वाली,
बैठे हुए त्यों उठ सैनिकों ने,
तत्काल प्रस्थान किया वहाँ से ।

(८३)

सेना थकी थी श्रम प्यास वाली,
ज्यों त्यों चले सैनिक धैर्यधारी,
वैसे मही योजन सप्त बीती,
जैसे गया अश्व वहीं चले थे ।

(८४)

उद्वेग में सैनिक थे उदासी,
थे भूप से वे बिछुड़े हुए जो,
प्यासे हुए, आश्रम देख आये,
बोले तभी गालव देख सेना।

(८५)

कैसे यहाँ पे किस हेतु आये?
मन्त्री नमा था मुनि को कहा यों,
जो है हिनाता हय है हमारा,
स्वामी कहाँ है सुध दीजियेगा।

(८६)

भारी व्यथा है हमको मुनीश्वर,
स्वामी हमारे बतलाइयेगा,
चिन्ता हमारे मन की मिटावें,
है प्रार्थना आप कृपा करेंगे।

(८७)

दी सान्त्वना गालव ने सभी को,
विश्रान्त होके जलपान ले लो,
स्वामी मिलेंगे सुखशान्ति में ही,
चिन्ता करो ना उनकी, यहीं है ।

(८८)

नन्दावती ने सब वृत्त जाना,
पद्मावती के पतिदेव से यों—
बोली उन्हें थी हँसते हँसाते,
आये यहाँ सैनिक और मन्त्री ।

(८९)

मन्त्री सभी उत्सुकता लिये थे,
आओ सभी गालव ने कहा था,
आये जहाँ पर्णकुटी अनूठी,
अच्छी व्यवस्था निरखी वहाँको ।

(९०)

भूपाल को देख प्रसन्न सेना,
सेना नमस्कार–युता हुई थी,
सामंत मन्त्री कहने लगे थे,
स्वामिन् ! तुम्हारी बहु शोध की थी ।

(९१)

घूमे बनों में गिरि-गह्वरों में,
स्वामी कहीं भी न मिले हमें थे,
है अश्व आया, उस भाँति आये,
उद्विग्नता शान्त हुई हमारी ।

(९२)

आत्मा बनी है मुद तोष वाली,
देखे यहाँ पे मुद आपको हैं,
आश्चर्यकारी घटना घटी थी,
आना अकस्मात् हमसे बना है ।

(९३)

स्वामी पधारो कहने लगे वे,
है राजधानी बिन नाथ सूनी,
है पौरवासी–मन में उदासी,
हे नाथ ! आश्वासन दो प्रजा को ।

(९४)

विश्राम की पर्णकुटी अनूठी,
पौधे खिले हैं उनकी सुगन्धी,
सेवा करें आश्रम के निवासी,
चिन्ता करो ना नृपराज बोले ।

(९५)

आदेश ऐसा नृप ने सुनाया,
मेरी प्रजा को कुछ कष्ट ना हो,
संभाल पूरी रखना पुरी की,
मैं तो अभी आश्रम में रहूँगा ।

(९६)

द्रुतविलम्बित

श्रम निवारण आश्रम की स्थली,
मिल गई सुविधा अति श्रेष्ठ है,
सुन निदेश अमात्य नरेन्द्र का,
सुभट लौट गये पुर को तभी ।

(९७)

इन्द्रवज्रा

सौन्दर्यशाला उस वाटिका में,
मैना मयूरी रमती उसी में,
है रम्य पुष्पावलियाँ सुगन्धी,
राजा प्रिया संग बना विनोदी ।

(९८)

इन्द्रवज्राषट्पदी

वैताढ्यभूमि नृप को बुलाती,
हो प्रीत पद्मोत्तर से अनूठी,
लौटे महीपाल स्वधाम को हैं,
हो चक्रवर्ती षट्खण्ड-भोगी,
हेमाद्रि-कुंजे मुनिनाथ होंगे,
आ जायगी भिल्ल कुरंग आत्मा ।

सर्ग ७

❖

(१)

द्रुतविलम्बित

जगत की ममता तज सर्वथा,
विमल आत्म चरित्र पवित्र है,
वह विभूति विभाति महान् है,
मनुज का करती उपकार है।

(२)

इन्द्रवज्रा

रत्नावती का सुत व्योम द्वारा,
था ढूँढता कुञ्ज गिरो नदी को,
चिन्ता करे मात नहीं मिली थी,
आया जहाँ गालव-वाटिका थी।

पृष्ठ संख्या १४३

(३)

बोला तभी शीश नमा ऋषि को,
वृत्तान्त सारा मुनि को सुनाया,
स्वामी बतावें मम मात है कहाँ,
बोले ऋषीराज प्रसन्न हो के।

(४)

माता तुम्हारी भगिनी यहीं है,
रम्या बनी नागर वल्लिशाला,
पद्मावती के पतिदेव बैठे,
स्वामी दिखावें स्थल कौनसा है ?

(५)

संकेत भेजा मुनि ने उन्हों को,
है भूप पद्मोत्तर, आ रहे हैं,
देखी व्यवस्था नृप ने वहाँ की,
आनन्द छाया मन में उन्हें था।

(६)

उपजातिवृत्त

भूपाल पद्मोत्तर द्वो मिले थे,
वहीं बिराजे उस वाटिका में,
बातें करें वे अति हर्ष वाली,
परस्परालाप हुआ उन्हीं का।

(७)

इन्द्रवज्रा

सानन्द पद्मोत्तर भूप बोले,
पद्मावती धन्य बनो सुहागिन,
स्वामी मिले हैं बहु पुण्यशाली,
है चक्रवर्ती सम भाग्यशाली।

(८)

स्वीकार मेरी विनती दयालु,
आना पड़ेगा तुमको पुरी में,
मेरा करो प्राङ्गण-पूत राजन् !
सिद्धार्थ होगा मम सद्म प्यारा।

(९)

वैताढ्य भूमे पुरियें महा हैं,
शोभा वहाँ की सुरधाम जैसी,
विद्याधरों के धन वैभवों की,
विद्या चमत्कारिकता मिलेगी ।

(१०)

विद्याधरों की रमणीय भू है,
होगा बुलावा सुर वाटिका में,
श्रीमान् का स्वागत हो वहाँ भी,
मैत्री करेंगे फिर आपसे वे ।

(११)

माता, चलो रत्नपुरी तुम्हारी,
पद्मावती नाथ महान राजा,
वे भी चलेंगे उनको मनायें,
रत्नावती के सुत ने कहा यों ।

(१२)

सन्नद्ध है यान सुव्योमगामी,
स्वामी ! पधारो अब देर क्या है?
अच्छी घड़ी है शुभ लग्न भी है,
शोभा करो, रत्नपुरी पधारें।

(१३)

द्रुतविलम्बित

अति मनोहर थी सुर-वाटिका,
स्थल मिला रमणीय निकेत का,
नृपति-स्वागत हेतु सुराङ्गना,
नित सुमंगल गीत सुनावती।

(१४)

मन्दाक्रान्ता

आती जाती सदन पर विद्याधरों की सुताएँ,
थी वे आनन्दित वचन, पद्मावती को सुनाती,
प्यारा पाया पतिवर महा भाग्यशाली शुभे है,
तेरा पुण्योदय वर हुआ जो बनी पट्टरानी।

पृष्ठ संख्या १४७

(१५)

इन्द्रवज्रा

वैताढ्य की उत्तर दक्षिणादिक्,
श्री स्वर्णबाहू विजयी हुए थे,
विद्याधरों ने निज भूप माना,
आनन्द विद्याधरियाँ मनातीं।

(१६)

सद्भावना से खुशियाँ मनाती,
पद्मावती के वर को लुभाती,
विद्याधरों से उन पुत्रियों की,
लेता सदा भेंट सुवर्णबाहु।

(१७)

द्रुतविलम्बित

नित नयी रमणी रनिवास में,
विपुल वैभव भौतिक सौख्य में,
नृपति भूल गया अपनी पुरी,
अमर भोग सुयोग विनोद में।

(पृष्ठ संख्या १४८

(१८)

नृपति पद्म सरोवर को गया,
लख पुराण पुरी सम कुंज को,
स्मृति हुई नृप को निज राज्य की,
बहुत काल बिता मुझको यहाँ।

(१९)

त्वरित ही सुधि लूँ निजधाम की,
मम प्रजा रहती किस भाँति से,
अब अवश्य प्रदर्शन मैं करूँ,
विमल चित्त प्रजाजन को लखूं।

(२०)

इन्द्रवज्रा

एकाग्रता में नृप को विलोका,
तत्काल पद्मोत्तर पास आये,
बोले, तभी नाथ विचारते क्या ?
क्या राज्य संचालन में कमी है।

(२१)

विद्याधरों को अब सूचना दो,
तत्काल ही में परिषद् बुलाओ,
जाना पुरी को मिल के सभी को,
आना तुम्हें है मुझ संग में ही।

(२२)

विद्याधरों को तब सूचना दी,
सानन्द में उत्सव था मनाया,
वैताढ्य भू के नृप ने खुशी में,
सम्राट पद्मोत्तर को बनाया।

(२३)

विद्याधरों से नृपराज बोले,
आदेश पद्मोत्तर का निभाना,
आनन्द में शासन को चलाना,
ईर्ष्या नहीं, द्वेष कभी न लाना।

(२४)

सन्नद्ध था पुष्प-विमान सम्यक्,
भूपाल अभ्यर्थित हो बिराजे,
बोले सभी थे हम आपके हैं,
स्वामी! कभी दर्शन दीजियेगा।

(२५)

विद्याधरों से बहुमान पाया,
ले सङ्ग पद्मोत्तर मित्र प्यारा,
पद्मावती आदि प्रिया सुशोभी,
भूपाल आया निज वाटिका में।

(२६)

वसन्ततिलकावृत्त

सारी पुराणपुर की मिल के प्रजा ने,
आवास-द्वार पर तोरण रम्य बाँधे,
व्यापारि थे नव-नवी रचना रचाते,
मानो बनी अमर-धाम समान शोभा।

पृष्ठ संख्या १५१

(२७)

श्रौ चूड़पेसि ललना नृप को वधाये,
भारी किया मुदित स्वागत चारु शोभी,
थी धाम धाम रुकती नृप की सवारी,
माला विभूषित नरेन्द्र प्रजाजनों से।

(२८)

भूपाल की विमल हार्दिक भावना में,
हैं दीन हीन हित में अनुराग पूरा,
है धन्य भाग्य अपने नृपराज आये,
बोली प्रजा मुदित हो विरुदावलि को।

(२९)

आये जहाँ कुशलबाहु सुपीठराजे,
कृत्वा प्रणाम नृप की उस पीठिका को,
सारे उपस्थित नरेन्द्र वहाँ हुए थे,
बैठी सभा जय-सुघोष हुआ वहाँ था।

(३०)

इन्द्रवज्रा

आमोद से दी चर ने बधाई,
उत्पन्न है चक्रमणी प्रभावी,
तत्काल भूपाल गये वहाँ थे,
द्रव्याष्ट से चक्रमणी – प्रपूजा।

(३१)

चामर

चक्र-रत्न छत्र-रत्न चर्म-रत्न दण्ड-रत्न था,
खड्ग–रत्न औ मणि सुकान्ति–रत्न कांकिणी,
अश्व हस्ति रत्न वार्घ की सुपट्ट भट्टिनी,
सैन्य नाथ कोष नाथ राज्य याज्ञिकादिकम्।

(३२)

इन्द्रवज्रा

जो थी बनी सुन्दर शस्त्र-शाला,
थी रत्न–राशी प्रकटी प्रभावी,
चौदह सहस्त्रामर जो सदा ही,
सेवा करे वे मणि राशियों की।

(३३)

दुखीजनों की लख के गरीबी,
दे के उन्हें दान सुखी बनाये,
सन्तोष पाया उन प्राणियों ने,
भूपाल की वे जय बोलते थे।

(३४)

छोड़े, लगे थे कर राज्य के जो,
औ दे उन्हें द्रव्य सहायता में,
सौदागरों को सुविधा मिली थी,
व्यापार का केन्द्र महा बना था।

(३५)

शिखरणी

अनूठी शोभा है नृपति परिषद् देवपुर ज्यों,
दिखाता छिन्न् कोटि पद-तल औ सैन्य उनका,
अनेकों राजा भूपति शरण में नित्य रहते,
अनुज्ञा को माने मनुज सब छः खण्ड अवनी।

(३६)

द्रुतविलम्बित

अवर भूप बने सब दास थे,
सतत रक्षक थे नृप अङ्ग के,
विविध भेंट प्रशस्त समस्त दें,
मन प्रसन्न करें नृपराज का।

(३७)

अमरधाम पुराण पुरी बनी,
जन प्रसन्न नरेन्द्र प्रताप से,
स्वजन-बन्धु परस्पर प्रेम से,
प्रमुदितानन वैभव भोगते।

(३८)

इन्द्रवज्रा

बैठे हुए भूपति चन्द्रशाला,
पद्मावती आदिक राणियाँ थीं,
आकाश में देव-विमान आते-
-जाते कहाँ ? देव नरेन्द्र सोचे।

(३९)

द्रुतविलम्बित

नृपति को वन–रक्षक ने कहा,
उपवनादि प्रफुल्लित है हुए,
रचित देव समोसरणाप्त है,
प्रभु बिराज रहे उस मध्य में।

(४०)

सुन नरेन्द्र प्रसन्न हुआ तभी,
कर विदा चर को बहु दान दें,
नृप निदेश दिया रनिवास को,
सब चलो प्रभु वन्दन को अभी।

(४१)

भुजङ्गप्रयातवृत्त

'जगन्नाथ' स्वामी वनोद्यान आये,
चलो वन्दना हेतु आनन्द लेवें,
सुनेंगे सुवाणी उन्हों की रसीली,
मिटेंगे किये पाप सारे भवों के।

(४२)

द्रुतविलम्बित वृत्त

पटह को सुन के पुर की प्रजा,
अधिक हर्षित थी मनमें हुई,
हृदय भाव पवित्र बना सभी,
नमन हेतु चली नृप संग में।

(४३)

विनय से कर वन्दन ईश का,
स्थित हुए परिषद् लख मर्त्य की,
अमरियों सुरवासव प्रेम से,
सुन रहे, प्रभु की शुभ देसना।

(४४)

इन्द्रवज्रा

है कर्मशाला जग मोह माया,
पक्षी भवों में पशु के भवों में,
पीड़ा अनेकों सब जीव भोगे,
क्यों व्यर्थ में मर्त्य प्रमाद सेवे।

(४५)

भूपाल दे चित्त, सुनी सुवाणी,
श्रोतागणों के मन में सुहाई,
सद्धर्म श्रद्धा उनमें जगी थी,
लौटी प्रजा थी अति हर्ष में ही ।

(४६)

वसन्ततिलका

भूपाल के हृदय में जिनराज वाणी,
दे प्रेरणा विरति की, अब जाग आत्मा,
है व्यर्थ मोह ममता दुनियाँ दुरंगी,
मायामयी जगत में भव-नृत्यशाला ।

(४७)

थे आरसी-भवन में नृपराज बैठे,
ऐसा विचार उनके मन में हुआ था,
मैंने कहीं सुर-विमान महान देखा,
ले धारणा सुमति में भव पूर्व देखा ।

(४८)

वैराग्य भाव नृप के मन में जगा था,
साम्राज्य-भार नृप ने युवराज को दे,
निस्सार विश्व-रचना समझी विनाशी,
ऐसा विचार करता दिन–रात राजा।

(४९)

उद्यानपाल कहता प्रभुजी पधारे,
बैठे वहाँ तरुलता विकसी जहाँ है,
देखी समोसरण की रचना अनोखी,
राजा गये शरण में प्रभु थे जहाँ पे।

(५०)

इन्द्रवज्रा

भूपाल बोले कर जोड़ दोनों,
त्रीरत्न दे के, मम आत्म तारें,
की प्राप्त दीक्षा बहु सौख्यकारी,
चारित्र में लीन बने तपस्वी।

पृष्ठ संख्या १५६

(५१)

मांगे अनुज्ञा प्रभु से तपस्वी,
तापूँ तपस्या अब जङ्गलों में,
दी थी अनुज्ञा जिनराज ने भी,
आनंद में 'क्षीरगिरी' पधारें।

(५२)

आत्मा तपाते वन में तपस्वी,
थी सूर्य के सन्मुख दृष्टि स्थापी,
कर्मावली शुष्क बनी तभी थी,
तत्काल तीर्थंकर-गोत्र बाँधा।

(५३)

द्रुतविलम्बित

नरक जीव कुरङ्ग किरात का,
जनम ले वह हिंसक योनि में,
बन गया वनराज अरण्य में,
हिरण-श्वापद को नित मारता।

(५४)

इन्द्रवज्रा

शार्दूल गर्जा, दिशी भीमकारी,
था पाद-प्रक्षेप किया अरण्य में,
भागे सभी जीव अरण्य में से,
जो भीति से कम्पित हो रहे थे।

(५५)

ध्यानस्थ आत्मा मुनिराज की थी,
कांतार में था वनराज देखा,
संलेषणा की स्थिर हो तपस्वी,
शार्दूल से थी समता उन्हीं की।

(५६)

आत्मा क्षमाशील बना तपस्वी,
ध्यानस्थ मुद्रा करके बिराजे,
तत्काल आया वनराज क्रोधी,
औ, दुष्ट ने वार किया तभी था।

(५७)

आत्मा उन्होंकी सुख शान्ति में थी,
आलोचती थी कृत कर्म-वल्ली,
ज्यों पूर्व में 'खंधक' ने किया था,
त्यों ही उन्होंने समता धरी थी।

(५८)

वसन्ततिलकावृत्त

सौन्दर्य सौख्य दशवाँ सुरलोक में है,
जो है महाप्रभ विमान प्रसून-शय्या,
उत्पन्न आत्म मुनि की उसमें हुई थी,
जो नित्य आगम सुधारस-पान पीते।

(५९)

चामर

बीश सागरोपमायु प्राप्त आनवान में,
देवता बना वहाँ सुवर्णबाहु जीव था,
इन्द्र से सभा अपूर्व पीठ राजती,
ज्ञानवृत्त देव-संग में उमङ्ग से करे।

(६०)

क्षीरवरण वन में फिरता-फिरता,
सिंह गया मर 'रौरव' पङ्क प्रभा,
जो दश सागरोपम आयु मिली,
भेदन छेदन के अति दुख भोगे।

(६१)

है दशवाँ सुरलोक प्रमोद जहाँ,
वर्णन है नवमें भव का यह तो,
पाठकवर्य चलें अब लें इनको,
वर्णन हो दसवें भव का सुख से।

(६२)

मेरा कहीं भी अपराध हो तो,
देंगे क्षमाशील क्षमा मुझे भी,
ज्ञानी तपस्वी करते क्षमा हैं,
स्वीकार लेवें मम वन्दना को।

*

सर्ग ८

❖

(१)

स्रग्धरा

कर्मों के बन्धनों को हर तप से, मोक्षगामी बने हैं,
मेरी भी वन्दना है चरणकमल में हे कृपासिंधु स्वामी,
आत्मा मेरी सुधारो, सुमति-सदन दे आप सम्यक्त्वदाता,
तारे प्राणी अनेकों समवसरण में, मिष्टवाणी पिलाके ।

(२)

द्रुतविलम्बित वृत्त

गिरि हिमालय उत्तर की दिशा,
निकलती उससे वर गङ्ग है,
भरत क्षेत्र मही उससे मुदा,
परम धाम बनारस तीर्थ है ।

पृष्ठ संख्या १६४

(३)

चित्रलेखा

अच्छी-क्षच्छी नव-नव रचना भव्य वाराणसी की,
ऊँचे-ऊँचे भवन सदन की चन्द्रशाला विचित्रा,
चैत्यों में सुन्दर जिनवर की मूर्तियाँ वीतरागी,
वे भक्तालम्बन अनुपम हैं तारती प्राणियों को।

(४)

है गङ्गा की नवल-तट छटा पादपों से सुहाती,
केकी का है रव वर करते नृत्य दूर्वास्थली में,
गौएँ बैठी कलरव तरु में पक्षियों का सुहाता,
नाचे कूदे मृग-शशक, करे खेल वृक्षावली में।

(५)

आते हैं यात्रिक तरण तरी बैठ के घूमते हैं,
छोटे-मोटे मकर सलिल में मत्स्य – मत्स्या अनेकों,
बैठे हैं घाट पर द्विज वहाँ वेद के मन्त्र पाठी,
गङ्गा की वे नव-नव करते अर्चना मन्त्र द्वारा।

(६)

शूलिन्–राधारमण–विलसती, मूर्तियाँ भाव वाली,
शोभा प्यारी मनहर दिखती रामचन्द्रालयों में,
गङ्गा के जो अनुपम तट पे औ देवालयों में,
पापी धोवे कलिमल मन का गंगा का नोर पी के।

(७)

शार्दूल विक्रीडित

योगीवृन्द सुभक्ति में रत सदा बैठे बना के कुटी,
वृक्षों की घन छाँह में कुछ बसे, धूनी लगा के वहाँ,
भस्मालेप शरीर में, सुमरते सानन्द में ईश को,
शास्त्रों का नित वे परायण करें, मोक्षार्थ के हेतु में।

(८)

चामर

गंग तीर के अनेक घाट चारु हैं जहाँ,
मर्त्य लोक बैठ गीत गान गावते वहाँ,
भंग की तरंग रंग है उमंग अंग में,
नैन रम्य गंग की तरंग को विलोकते।

(९)

अश्वसेन का विशाल राज्य कूटनीति का,
थी प्रजा विवेक में विनोद में प्रहर्षिणी,
वृद्ध बाल बालिका किशोर प्रेम-धाम में,
धर्मनीति जानते सदा दयालु भाव में।

(१०)

चित्रलेखा

'वामा' रानी विमल सुमन थी, पद्मिनी कोमलांगी,
सारा अन्तःपुर मुद उनसे, दासियाँ गीत गाती,
थी राजा की प्रिय बन रहती रम्य आमोद भोगे,
दुःखी जीवों पर सतत दया दान बरसावती थी।

(११)

होता वाणिज्य विविध पुर में पौरवासी सुखी थे,
आवासों की अनुपम रचना दर्शकों को सुहाती,
अत्यानन्दी बन कर विचरे घाट भागीरथी के,
देखे शोभा मुद मन जल की रम्य कल्लोल क्रीड़ा।

(१२)

इन्द्रवज्रा

है शुभ्र गंगोदक की तरंगें,
है पादपों की प्रतिबिम्ब छाया,
आवास आभा उसमें दिखाती,
स्नानार्थ आते नित अंशुमाली।

(१३)

स्नानार्थ आते मुद भाव यात्री,
सामान ले पूजन का अनूठा,
कोई चढ़ाते सुम-माल गुँथी,
गाते बजाते तट गंग पे थे।

(१४)

कौशल्य जैसे तरिणी तिराते,
वे दर्शकों के मन को लुभाते,
गोते लगा के कर स्नान संध्या,
औ वस्त्र धो के भर नीर जाते।

(१५)

हो के विनोदी तरु छाँह बैठे,
प्रोत्साह में प्रक्षेक गीत गाते,
लीला अनेकों जल जन्तु की थी,
गौएँ व गोपालक नीर पीते।

(१६)

वे लौट आवे पुर की छटा में,
भूपाल के तेज प्रताप से ही,
निःशङ्क हो के रहते सभी थे,
सारी प्रजा मोद प्रमोद वाली।

(१७)

थी दानशाला पुर पास में ही,
थे तीर्थयात्री श्रम को निवारे,
विश्राम लेते सुख शान्ति पाते,
'वामा' सती की जय बोलते थे।

(१८)

वाराणसी भू सुषमा निराली,
मैत्री कराती सब प्राणियों से,
है सौख्यकारी व्यवहार सारा,
स्वर्गीयसा वैभव था वहाँ का ।

(१९)

द्रुतविलम्बित

प्रवर भाव दया जिसके हृदे,
वह मनुष्य, मनुष्य प्रदीप है,
समझना पर जीव स्वजीव सा,
सहनशील गुणोदय मर्त्य में ।

(२०)

विचरते नर संयम-सद्म में,
जगत की ममता तजता तभी,
अमरधाम मिले उस मर्त्य को,
जिस प्रकार सुवर्ण नरेन्द्र को ।

(२१)

इन्द्रवज्रा

देवोपयोगी वर पुष्प-शय्या,
है देव की वैक्रिय दिव्य काया,
पुण्यानुबंधी वह पुण्य भोगे,
सानन्द में देव सुवर्णबाहू।

(२२)

समृद्धियाँ देव-विमान की जो,
शृङ्गार-भूषा कर रम्य राजे,
घूमे सदा नन्दन - वाटिका में,
आनन्द आवास वहीं बसा है।

(२३)

हेमाद्रि की पाण्डुक-वाटिका में,
तीर्थङ्करों के अभिषेक होते,
होते वहाँ शामिल 'स्वर्णबाहू',
संख्या अढ़ीसौ अभिषेक की है।

(२४)

वे तीर्थ-नन्दीश्वर द्वीप भी आ,
शोभा यहाँ स्वर्ग लुभावनी है,
चारों दिशा में चतुरस्त्रधारी,
नीलाम्बराभा गिरि की अनूठो ।

(२५)

है कुञ्ज भी मञ्जुल मञ्जु भाषे,
है मल्लिका मण्डित सिक्त धारा,
उत्फुल्ल पद्मा बहु, वापियों में,
क्रीड़ा करे रम्य मिलिन्द कामी ।

(२६)

चारों दिशा नन्दन - वाटिका है,
वापी वहाँ चार सुचारु शोभे,
है चैत्य की शिल्प-कला अनोखी,
है मूर्तियाँ शाश्वत वीतरागी ।

(२७)

आते वहाँ वासव देव-देवी,
हैं पूजते वे जिनदेव बिम्बों,
सत् पुण्य-वल्ली सब सींचते हैं,
अष्टाह्निका उत्सव को मना के ।

(२८)

आराम के हेतु निकुंज जावे,
ले साथ विद्याधर मण्डली को,
क्रीड़ा करें नित्य सुरांगनाएँ,
है पादपानेक लतावली से ।

(२९)

आमोद लेते सुर वाटिका में,
औ निर्झरों से करके सुमैत्री,
आनन्द में देव 'सुवर्णबाहू',
यात्रा मना के निज धाम आये ।

(३०)

हैं आगमों रत्न करण्डियों में,
है रत्न पे मण्डित वर्णमाला,
तत्त्वार्थ से पूर्ण सुपंक्तियाँ हैं,
वाँचे उन्हें देव सुवर्णबाहू।

(३१)

सौन्दर्य भद्रासन पे बिराजे,
आयुष्य अल्पावधि का विलोका,
माने कुमिथ्या सुर धाम लीला,
तीर्थङ्करों के गुणगान गाते।

(३२)

द्रुतविलम्बित

प्रवर प्राणत कल्प-विमान को,
अमर ऋद्धि सभी तज सर्वथा,
च्यवा, वसा महिषी-वर कुक्षि में,
जगत के हित दी शुभ सूचना।

(३३)

इन्द्रवज्रा

काली चतुर्थी मधुमास की थी,
नक्षत्र राधा शुभ योग-युक्ता,
रात्रि गई संग प्रमाद ले के,
आई उषा शोण-प्रभात ले के।

(३४)

आती दिखाई मुख पात्र में थी,
आलोकती चौदह स्वप्न श्रेणी,
आलस्य त्यागा महिषी उठी थी,
वे स्वप्न थे मंजुल क्रांतिकारी।

(३५)

तोटक

रजनी सजनी अनमोल बनी,
अति उत्तम स्वप्न दिये मुझको,
इस भाँति विचार चली महिषी,
मन ही मन में मुद भाव लिये।

पृष्ठ संख्या १७५

(३६)

शार्दूल

रानी आवत धाम में मृदुल थी शैया जहाँ भूप की,
अङ्गोपांग प्रफुल्ल देख नृप ने पूछा उन्हें हास्य में,
रात्री अन्त अनन्त में चमकती नक्षत्र चित्रावली,
आये चौदह स्वप्न, देख मुख मैं जागी तभी नाथ मैं।

(३७)

द्रुतविलम्बित

सुन महीपति स्वप्न प्रमोद के,
मन प्रसन्न कहा प्रिय वल्लभे,
परम पावन पुत्र-मणी मिले,
कर प्रणाम तथास्तु किया तभी।

(३८)

पंचचामर

नरेन्द्र का कहा हुआ विचारती विचारती,
उमंग अंग में प्रफुल्ल चित्त साथ ली हुई,
निकेत को गई, विलोक स्वामिनी सुअंग को,
अपार हर्ष दास और दासियां मनावती।

(३९)

महीप बार बार सोचता, सुस्वप्न आवली,
महान् पुण्यवन्त जीव जन्म की सु-सूचना,
अवश्य हो विमर्श जो क्रमांक स्वप्न प्राप्त है,
करूँ प्रभात काल में सभा इसी प्रसङ्ग में।

(४०)

चामर

द्वारपाल ला निमित्त शास्त्र विज्ञ-मण्डली,
न्याय धाम को सजा बुला प्रधान-मंडली,
राज्ञि के लिए कनात खींच न्यायधाम में,
जो नरेन्द्र का निदेश था वही हुआ वहाँ।

(४१)

तोटक

प्रात क्रिया कर मल्ल क्रिया कर,
भूप विभूषण भूषित हो कर,
राज पधार गये निज आसन,
इन्द्र-समान सभा अति राजत।

(४२)

द्रुतविलम्बित

विविध शास्त्र-प्रवीण विचारिणी,
सुपन-पाठक की बुध-मण्डली,
मुदित भाव लिये वह आ गई,
नृपति के प्रति दी शुभकामना।

(४३)

तोटक

राज्य पुरोहित उत्थित बोलत,
याद किये हमको किस कारण,
नाथ! निदेश करो शुभ है पल,
राजसभा अति राजित है अब।

(४४)

भूप कहे सुनिये बुध – मण्डल,
निद्रित थी कुछ ही महिषी जब,
स्वप्न मनोहर चौदह देखत,
अर्थ प्रकाश करो क्रम से अब।

(४५)

चामर

विज्ञ-मण्डली सुस्वप्न शास्त्र को विलोकती,
विप्र रूप शक्र ने कहा नरेन्द्र से तभी,
श्रेष्ठ है महान है अहा ! सुमाल स्वप्न की,
स्वर्ग, मर्त्य-लोकपाल पुत्र हो प्रपूज्य का ।

(४६)

द्रुतविलम्बित

सुपन—शास्त्र विधान प्रमाण है,
नगर-राज्य पुरोहित ने कहा,
कथन सत्य सदा बुध वृद्ध का,
नृपति स्वप्न-सुशास्त्र कथा सुने ।

(४७)

स्रग्धरा

स्वप्नोंकी कान्ति सारी गज वृषभ तथा सिंह लक्षी सुमाला
आनंदी सौख्यकारी शशि-रवि अनमोल ध्वजा पूर्णकुंभः
पद्मों से पूर्ण पद्माकर अलि रमते शांत क्षीरोदधि में
रत्नों से युक्त आवास वर अमर का रत्न पुंजाग्निज्वाला ।

(४८)

इन्द्रवज्रा

ना वायु औ पित्त विकार कोई,
हो स्वस्थ काया जिनकी अनूठी,
मुहूर्त में मङ्गल प्रात वेला,
जो स्वप्न देखे वह सत्य होते।

(४९)

ये स्वप्न तीर्थङ्कर मात देखे,
सौंदर्य से युक्त प्रभा जिन्हों की,
यों चक्रवर्ती जननी निहारे,
हो मंद-छाया सुपनावली की।

(५०)

चामर

वासुदेव मात सप्त, स्वप्न को निहारती,
रम्य भारतार्य भूमि राज्य को सुभोगता,
मांडलीक भूप मात एक दो विलोकती,
नित्य ही प्रजा हितेच्छु नीति को रचे मुदा।

(५१)

द्रुतविलम्बित वृत्त

इस प्रकार पुरोहित ने कहा,
सुपन का फल मञ्जुल जानिये,
तव सुवंश-प्रदीप्र कुमार हो,
सतत शासन-वृद्धि विराट हो।

(५२)

सुपन ये जिनको दिखते यदा,
सुर-सुरी-मन-वल्लभ वो बने,
बिविध भूति विभूति विभावती,
यश-प्रभा प्रसरे इस विश्व में।

(५३)

कुशल वाक्पति पण्डित ने कहा,
प्रथम ही शुभ चिह्न बता रहे,
नगर के जन का शुभ भाग्य है,
सुपन है अति उत्तम राज्ञि के।

(५४)

उस सभा बिच वाक्पटु विज्ञ ने,
इस प्रकार कहा पुर की प्रजा,
दिवस रैन व्यतीत करे मुदा,
नहिं कमी, पुर में धन धान्य की ।

(५५)

विबुध-मंडल ने बुध भाव से,
कर परस्पर स्वप्न विचारणा,
विनय से कर जोड़ नरेश को,
वर दिया कुल दीपक पुत्र का ।

(५६)

इन्द्रवज्रा

सारी सभा में अति हर्ष छाया,
रानी-सहेली मुद मानसा थी,
भूपाल ने पण्डित-मण्डली को,
दे द्रव्य का दान विदा किये थे ।

(५७)

द्रुतविलम्बित

मुद मना करके परिषद् उठी,
नृपति दीनदयाल स्वधाम में,
फिर गयी महिषी मन हर्ष थी,
धवल-मङ्गल गीत सदा सुने।

(५८)

त्रिपथगा तट ऊपर धाम में,
विविध भाँति सुशोभित वाटिका,
भ्रमण हेतु चली निज बाग में,
मुदित हो महिषी नृप संग में।

(५९)

विविध भाँति सुपाटल मोगरा,
मुकुलिता कलियाँ खिलती जहाँ,
कमल कोमल सी महिषी स्वयं,
नृपति को कर से दिखला रही।

(६०)

कुरुब, जामुन चम्पक वृक्ष को,
नव रसाल तमाल लवङ्ग को,
करमदा खिरणी तज पत्र को,
नवल मञ्जरियाँ इठला रही।

(६१)

मुकुरती कलिका अलि चूमते,
ललित थी उटजा नव पर्ण की,
निरख के महिषी उनकी छटा,
नृपति को वह यों बतला रही।

(६२)

नवलता तरु से लिपटी हुई,
मधुप गुञ्जन की ध्वनि थी जहाँ,
खल करे कलनाद सुहावना,
कह रही नृप से महिषी तभी।

पृष्ठ संख्या १८४

(६३)

थक गये रवि अश्व प्रयाण से,
गगन लोहित पश्चिम का हुआ,
उड़ रही नभ में खग-मण्डली,
विपिन से चर चौपद आ रहे।

(६४)

रथ खड़ा कबसे अपने लिए,
अब यहाँ पर है रुकना नहीं,
स्थित हुए रथ में, रथ त्यों चला,
नृपति केतन द्वार समीप में।

(६५)

हृदय कोमल भाव दयामयो,
विनय से रहती महिषी सदा,
मन उमङ्ग करे निज धाम में,
स्मरण पूजन नेमि जिनेन्द्र का।

(६६)

रजनि में महिषी कुछ सुप्त थी,
उस समा अहि-फुत्कृति को सुना,
त्वरित जागृत हो लखती वहाँ,
उरग आँगण में चलता हुआ।

(६७)

नृपति को महिषी कहती प्रभो,
गत हुई मम नींद उसी समा,
धवल सर्प गया मम पास से,
भवन में वह ओझल हो गया।

(६८)

मुदित हो नृप ने उससे कहा,
कर गया तुमको शुभ सूचना,
डर नहीं तुमको उनसे प्रिये,
इसलिये अप मङ्गल है नहीं।

(६९)

इन्द्रवज्रा

होगा तुझे प्राप्त कुमार प्यारा,
स्वप्नावली की शुभ सूचना है,
होगा महा वल्लभ मानवों का,
दूँगा उसे 'पार्श्वकुमार' संज्ञा।

(७०)

द्रुतविलम्बित वृत्त

इस प्रकार विनोद नरेन्द्र का,
सुन प्रसन्न हुई महिषी वहाँ,
फिर गई चल के गज गामिनी,
विचरती सुख से रनिवास में।

(७१)

इन्द्रवज्रा

होता कभी दोहद राज्ञि को था,
सानन्द में हो परिपूर्ण होता,
थीं मनोरञ्जन दासियाँ थीं,
हो राजमाता तव गर्भ-रक्षा।

(७२)

आहार हो सात्विक भाव वाला,
कषाय मीठा न कटू न तीखा,
ठट्ठा कुचाला करना न ज्यादा,
झूला न झूलो चढ़ना न ऊँचा ।

(७३)

जाना न आना तुम सीढ़ियों से,
देता न हास्यादिक क्रोध शोभा,
बातें अनेकों सुविवेक वाली,
यों बोलती थी चरियाँ खुशी में ।

(७४)

द्रुतविलम्बित

सुखद गूढ़ सुगर्भ हमें लगा,
विनय से कहती चरियाँ उन्हें,
यतन पूर्वक हो प्रतिपालना,
प्रसव हो सुख से यह कामना ।

(७५)

इन्द्रवज्रा

थे पार्श्ववर्ती नृप माण्डलीक,
वे अश्वसेनाधिप पास आते,
वे सोचते राजकुमार भावी,
होगा प्रतापी मन का दयालु ।

(७६)

यों बन्दियों में नित बात होती,
होंगे तभी मुक्त कुमार होंगे,
चोरी करेंगे न कहीं कभी भी,
सन्मार्गगामी बन हां, चलेंगे ।

(७७)

वाराणसी की रमणीय भूमि,
पौधे अनेकों वन बूटियाँ भी,
औ पक्षियों का कलनाद प्यारा,
होगा दयालु नृप नन्द प्यारा ।

(७८)

यों कर्मचारी मन में विचारें,
होगी खुशी में अपनी तरक्की,
सौदागरों में यह बात होती,
व्यापार होगा कर से विमुक्त ।

(७९)

दु:खी जनों में चलती यूँ चर्चा,
रोते उन्हों के जब बाल-बच्चे,
सारी बुभुक्षा अपनी मिटेगी,
माँ राजरानी सुत-जन्म देगी ।

(८०)

सारी प्रजा में अति मोद था यों,
है कौनसा वासर धन्य होगा ?
बाजे बजेंगे शुभ सूचना के,
औ, भूप का चित्त प्रसन्न होगा ।

(८१)

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार सभी नर-नारियाँ,
मन खुशी अपनी अपनी बता,
नगर वीथि सुहट्ट निकेत में,
कुँअर हो, जन बात करें सदा।

(८२)

वसन्ततिलक

है लेख प्राक्कथन में प्रभु जन्म होगा,
आवे सुछप्पन सुरी जग-मात पार्श्वे,
हेमाद्रि में अमरियाँ सुर इन्द्र आवें,
'जन्मोत्सवानुपम' औ अभिषेक होंगे।

★

सर्ग ६

(१)

द्रुतविलम्बित

प्रसवती वर दिव्य विभूतियाँ,
परम पावन भारत की धरा,
पुरुष त्रेसठ के अवतार से,
सतत वृद्धि हुई मनु धर्म की।

(२)

शार्दूल विक्रीडित

झूलें डाल रसाल की मरकटी के बाल लीला करें,
मानो अग्नि पलाश में लग रही, थे पांथ यों देखते,
जाता था ऋतुराज, ग्रीष्म-ऋतु के भी आरहे घस्र है,
जाम्बू रायरण आम के फल लगे थे कीर मैना सुखी।

पृष्ठ संख्या १६२

(३)

है वर्षीतप पर्व अक्षय तिथी मांगल्यकारी सदा,
लूएँ बाज रही प्रचण्ड वन में छाया घटी वृक्ष की,
तप्ती थी अवनी, नदी जल घटा था वापिका कूप का,
था वैशाख विहार में, पवन तप्ता जेष्ठ ले आ गया।

(४)

आये मेघकुमार भी सजल से ले मास आषाढ़ को,
आकाशे चपला महा चमकती थी गर्जना घो घूरती,
खेतीकार करे नवीन हल से, थी भूमि की शोधना,
बोते कर्षक बीज भूमितल में आशा सदुत्साह से।

(५)

चातुर्मास लगा, विहार न करें निर्ग्रन्थ अन्यत्र भी,
पूछे भक्त गृहस्थ को ठहरना है चारमासी हमें।
यों निर्देश गृहस्थ का श्रमण ले पश्चात् तपस्या करें,
आत्मा के गुण-तत्व में विचरते हैं योग स्वाध्याय में।

(६)

आया श्रावण मास भी बरसता था नीर आकाश से,
रक्षा बन्धन पर्व है भगिनी का सद्पूर्णिमा श्रावणी,
पर्वों का सुविधान जीवन महा रक्षा करों में कसी,
भाई को कहती तभी बहन यों रक्षा करेगा विभुः ।

(७)

पृथ्वी तृप्त हुई नदी तरकषा आ पूर थे ताल भी,
उत्कल्लोल तरंग भी प्रबलता से ढूंढती प्रान्त को,
था नीलाम्बर वेश सौम्य अचला थी सौम्यदर्शी बनी,
नाना भाँति विहंग केलि करते थे चौपदी जीव भी ।

(८)

देती है वर सूचना प्रकृति भी यों हे मानवों ! सोचना,
गाओगे गुणगान ईशवर के सङ्गीत के साज से,
बीता श्रावण मास, खेत रखवाले बाल बाला मिले,
होता उत्सव-गान ग्रामजन में औ क्षेत्र में कुञ्ज में ।

(९)

देखो भाद्रव मास की विमलता जो त्यागियों से मिली,
श्री पर्यूषण पर्व में तप करे औ छट्ठ अट्ठाइयों,
थे संवत्सर पर्व की कर क्रिया आलोचते दोष को,
आई है ऋषि पंचमी मिलन को होता खमतखामणा।

(१०)

ध्याती है जनता महा नवपदों को क्वाँर के मास में,
वे आयम्बिल से तपे शिशिर की सी पूर्णिमा राजती,
खेतों में कृषि लोग यों फसल को लेते उसे काटके,
लाते हैं खलिहान में फसल को थे वे सजाते वहाँ।

(११)

जो बाला नव योषिता प्रिय-ग्रहे जाती मुदा उन्मना,
शिक्षा मात सहेलियाँ हितकरी देती उसे प्रेम से,
श्वश्रु का गुरु तात का विनय से तू मान देना उन्हें,
है कौटुम्बिक सत्य माम उनकी सेवा सदा ही करो।

(१२)

आया कार्तिक मास के दिवस भी वे साज शृंगार के,
गेह द्वार सजे मनुष्य अपने, दीपावली आ रही,
मर्त्यें नित्य जिनेन्द्र की स्तुति करे सद्-भक्ति के भाव में,
आत्मा के मल को निवारण करें देवार्चना सत्य है।

(१३)

रोली श्रीफल पान अक्षत तथा मिष्टान्न की वस्तुएँ,
ले के पूजन के लिए नव सजा सामग्रियाँ थाल में,
लावे नूतन चोपड़ा कलम औ स्याही मसी पात्र में,
ध्या के गौतम ईश को मुदमना पूजें बही चोपड़ा।

(१४)

था हेमन्त प्रभूत दे फसल को औ पौष भी आ रहा,
औ शीतानिल का प्रसार करता आवास औ कुंज में,
थी बाला महिला तथोद्वहिता आनन्द के धाम में,
ज्ञानाभ्यास करें, करे जगत की सौरम्य क्रीड़ा तथा।

(१५)

था सर्वत्र समीर भी मलय का जो था निराधार सा,
वातावरण पवित्र था, वसुमति का भी उसी काल में,
तारा-मण्डल की सुकान्ति नभ में थी सौम्य चित्रावली,
पक्षी भैरवि बोलते शकुन में यों सौख्य पावे मही।

(१६)

आया वायु सुगंध मन्द गति से आनन्ददायी महा,
गंगा नीर शनैः शनैः मिलन को था जारहा सिन्धु में,
रानी के रनिवास में उस घड़ी थी दासियाँ सो गई,
लेते थे सब नींद मानव तभी आमय से मुक्त हो।

(१७)

चारों दिग्-विदिशा निवास करती छप्पन्न देवी जहाँ,
उन्हों के चारु विमान कम्पित हुए देवी सभी सोचती,
है सौन्दर्य बनारसी नगर गंगा के किनारे बसा,
था जानावधिज्ञान से, प्रसव का है काल तत्काल ही।

पृष्ठ संख्या १६७

(१८)

आई वेरनिवास में मुदमना थी अर्ध रात्रि समा,
आई हैं हम सूतिकर्म करने को, आपका भाव से,
चिन्ता सोच किसी प्रकार करने का है नहीं आपको,
जो त्रैलोक्य-प्रदीप है, प्रकट होंगे विश्व के भाग्य से।

(१९)

था नक्षत्र अपूर्व पौष वदि में, राधा प्रम दी बनी,
था लग्नेश नवांश उच्च ग्रह का थी दिग्तिथि पौषकी।
है ज्ञानावधि युक्त नाथ प्रकटे वामा सती कुक्षि से,
अंगोपांग प्रभा अभूत लगती थी नीलवर्णी छटा।

(२०)

ले के उत्सुक भाव को रुचिर से रूपा स्वरूपा वहाँ,
आई थी रुपकावती त्वरित ही, थी और रूपांशिका,
इन्होंने तब नालच्छेदन किया तत्काल सद्भाव से,
नाली को रख भूमि को खनन की पूरी उसे रत्न से।

(२१)

छाया मोद प्रमोद त्रीजगत के जीवात्म के चित्त में,
था उद्योत हुआ सभी नरक के वासी खुशी थे हुए,
मुस्काती प्रकृति स्वभाविक वहाँ हेमन्त के साथ में,
राजावास खिला बनारसि हुई सौभाग्यवन्ती तभी।

(२२)

आई थी सुरियाँ वहाँ त्वरित ही आठों अधोलोकिनी,
वे संवर्त समीर छोड़ कर के यों भूमि की शुद्धि की,
थे ईशान सुकोण में वर रचे वे केल की मण्डपी,
रम्भा के वरधाम रम्य ककुभों में थे सजाये तभी।

(२३)

आई थी अठ ऊर्ध्वलोक रह नारी वे मना हर्ष को,
वर्षा नीर सुपुष्प वृष्टि करके वे केल के धाम में,
आई पूर्व दिशा गिरी रुचक से थी देवियाँ शीघ्र ही,
आठों ही सुरियाँ सुदर्पण दिखाने प्रेम से नाथ को।

(२४)

आई पर्वत की सुदक्षिण दिशा से अष्ट जो देवियाँ,
वे नीरोषधि से भरे कलश को भृङ्गार को पूर के,
हाथों में कलशों लिये कनक के आठों खड़ीं देवियाँ,
होगी जन्म-क्रिया यहीं अमरियाँ के चित्त में हर्ष था।

(२५)

थी छप्पन कुमारिका प्रमुदिता सन्मान में ईश के,
जो जो थे अधिकार ले सब केली घरों में खड़ी,
पङ्खा, चामर, दीप, दर्पण लिये है देवियाँ हर्ष में,
थी जन्मोत्सव का विधान करने उत्साह में उत्सुका।

(२६)

पश्चात् तेल सुगंध-मर्दन किया औ स्नान भी था करा,
प्रत्येकाङ्ग सुचारु देवपट से यों पोंछ के देवियाँ,
वस्त्राभूषण दिव्य रम्य पहिना के नाथ की मात को,
वेदी पे प्रभु को बिठा जननी को द्रव्याष्ट ले थाल में।

(२७)

पादांगुष्ट प्रपूज के अमरियाँ छप्पन्न आमोद में,
वे पादाम्बुज में नमी सब जनी श्रद्धायुता हर्षिता,
वे चन्द्रानन चारु देख प्रभु का थी नाचती गावती,
की थी आंणिक काष्ट से अनल की प्रत्यक्ष यज्ञक्रिया।

(२८)

रक्षा हेतु विभूति बाँध सुरियाँ द्वौ की भुजा पे तदा,
'हो शैलायु-समान आयु प्रभु का' आशीष दें हर्ष में,
सर्पाकार बनी सुजङ्घ पर है रोमावली आपकी,
आमोदावधिज्ञान-युक्त प्रभु जनमें, हो प्राणियोंका भला।

(२९)

यों माधुर्य गुणावली अमरियाँ गा मात औ ईश को,
माता के निज धाम में स्थित किये ले साथ में ईश को,
रत्नों से रच गेंद द्वौ रख वहाँ पर्यङ्क भी रत्न का,
वे स्वस्थान गईं प्रणाम करके सानन्द में नाथ को।

(३०)

शक्रेन्द्रासन शीघ्र कम्पित हुआ आलोकता ज्ञान से,
जो दिग्–दक्षिण अर्द्ध है भरत की मेरुगिरि से तथा,
गङ्गा नीर शनैः शनैः चल रहा हेमाद्रि से उद्गमा,
जन्मे हैं अश्वसेन घर में वामा–सती कुक्षी से।

(३१)

जाना है मुझको अभी त्वरित ही वाराणसी धाम को,
ऐसा भाव विचार के सुरपति वैसे उठे पीठ से,
चित्तोल्लास 'नमुत्थुणं' स्तव पढ़ा लेके दिशा पूज्य की,
बारम्बार सुरेन्द्र मस्तक झुका की वंदना नाथ को।

(३२)

इन्द्रवज्रा

बैठे सुरेन्द्रासन पे पुनः थे,
बोले सभा मध्य प्रहर्ष में ही,
वाराणसी में जगदीश जन्मे,
वामा सती धन्य हुई उन्हों से।

पृष्ठ संख्या २०२

(३३)

मेरी अनुज्ञा हरणैगमेषी,
हेमाद्रि की पांडुक वाटिका में,
जा के करो उत्सव की व्यवस्था,
तत्काल सारे अभिषेक होंगे।

(३४)

जाओ सुघोषा सुखसे बजाओ
यों लक्ष बत्तीस विमानवासी,
आदेश मेरा सब जान जावे,
तत्काल ही में सब मेरु आवें।

(३५)

स्वीकार आज्ञा हरिणैगमेषी,
घण्टा सुघोषा रव को कराया,
दी सूचना यों अमरावती में,
हेमाद्रि जाओ प्रभु को वधाने।

(३६)

घण्टा बजे बारह देवलोके,
है शङ्खनादी भवनेन्द्रवासी,
यों व्यन्तरेन्द्रानक नाद वाले,
ज्योतिष्क देवेन्द्र वनेन्द्रवादी।

(३७)

तैयार हो चार निकाय देवों,
जाने लगे रम्य विमान ले के,
देवाङ्गना भी कर चारु शोभा,
बैठी उसीमें नभयान जाता।

(३८)

सङ्केत देती सुरियाँ सुरों को,
देखो हमारा यह यान आगे,
स्पर्धा दिखाते खुशियाँ मनाते,
जाने लगे देव-विमान द्वारा।

(३९)

हैं अश्व औ सारस रूप वाले,
सारंग, तोता अरु हंस मेना,
ऐसे सुरों के नभयान जाते,
वामा-सती–नन्दन को वधाने।

(४०)

आमोद की थी घड़ियाँ सुरों में,
स्पर्धा करे यान बढ़ा बढ़ा के,
तेवीसवाँ ईश सुमेरु आवें,
जा के करें स्वागत गीत गा के।

(४१)

हेमाद्रि भी स्वागत में खड़ा है,
रम्यस्थली पांडुक वाटिका की,
है कुंज भी स्वागत में विकासी,
सङ्कीर्ण होते सुरयान सारे।

(४२)

सौन्दर्य है स्फटिक-पीठिका का,
मन्दार छाया उसपे सुहाती,
तीर्थङ्करों का जब जन्म होता,
होते यहाँ पे अभिषेक सारे।

(४३)

शङ्खाहुली औषधियाँ अनेकों,
लाई गई पर्वत द्वीप से थी,
वे सर्व गङ्गोदक में मिलाई,
थे कुम्भ पूरे उनसे करोड़ों।

(४४)

सौन्दर्य-भूषा कर देवदेवी,
सारी व्यवस्था करके खड़े हैं,
उत्कृष्ट थे उत्सुक भावना में,
प्रत्यक्ष जन्मोत्सव को मनाने।

(४५)

मांगल्यकारी सुर दुन्दुभी भी,
वाजिन्त्र बाजे अति ही सुहाने,
सारंगियां ताल मृदंग थालो,
वीणा बजे राग सुराग वाली।

(४६)

'शक्रेन्द्र' द्यौ में खुशियाँ मनाता,
आया जहाँ रम्य बनारसी थी,
'वामा' सती स्वस्थ विचार में थी,
सोये हुए थे सब दास-दासी।

(४७)

हो के विवेकी सुरनाथ बोले,
हे राजमाता ! प्रभु जन्मदातृ,
हैं आप पूज्या भयभीत ना हो,
पर्यङ्क में ही प्रभु सो रहे हैं।

(४८)

हेमाद्रि पे उत्सव चारु होगा,
होगा वहाँ पे अभिषेक भारी,
आया यहाँ हूँ इस हेतु से ही,
ऐसा वहाँ वासन ने सुनाया ।

(४६)

छप्पन्न आई अमरी यहाँ थी,
सोल्लास जन्मोत्सव को मना के,
लौटी सभी हैं, सुरनाथ बोले,
औ दी अवस्वापिनी नींद माँ को ।

(५०)

तत्काल में वैक्रिय-लब्धि से ही,
मुद्रा रची थी प्रभु रूप जैसी,
वो था नहीं पुण्य सुपुंज राशी,
माँ कक्ष में ही उसको सुला के ।

(५१)

श्री शक्र ने वैक्रिय लब्धि द्वारा,
मुद्रा बना चार सुरेन्द्र जैसी,
की वन्दना वासव ने खुशी में,
कर्त्तव्य पाले प्रभु को उठाये।

(५२)

धारा अनोखा वर छत्र माथे,
द्वौ वीजते चामर पार्श्ववर्ती,
आगे उछाले पवि को करों से,
शक्रेन्द्र ले के प्रभु को पधारे।

(५३)

सानन्द बोला हरिणैगमेषी,
सारी व्यवस्था अभिषेक वाली,
कुम्भों भरे पूर्ण जलोदधि से,
आये प्रमोदी शशि-अंशुमाली।

(५४)

औ स्वर्ग से थे सब इन्द्र आये,
आये सभी हैं सुरलोकवासी,
स्वामी प्रतीक्षा करते सभी हैं,
उत्साह भारी सुरमण्डलो में।

(५५)

देवांगना मंगल गीत गाती,
आनन्द छाया सुरमण्डलो में,
गा गान तीर्थङ्कर के गुणों को,
जयजय रवों से प्रभु को बधायें।

(५६)

शक्रेन्द्र आनन्द महा मनाता,
बैठा उसी स्फटिक पीठिका पे,
उत्सङ्ग में ले प्रभु को सुहाता,
पश्चात् कहा अच्युत इन्द्र को ही।

(५७)

है दर्शकों को उच्छरंग भारी,
सर्वत्र है शान्ति त्रिलोक-भू में,
सर्वोषधि अम्बु प्रपूर्ण कुम्भो,
ले के इन्हों को अभिषेक कीजे।

(५८)

राज्याभिषेकादि करे खुशी में,
भारी मनाता मुद अच्युतेन्द्र,
सारी क्रिया की अभिषेक वाली,
वैसी क्रिया को क्रम से सभी ने।

(५९)

पश्चात् क्रिया को शशि सूर्यने भी,
संख्या अढ़ीसौ अभिषेक होते,
यों देव देवी खुशियाँ मनाते,
ले कुम्भ ढोले सब देव देवी।

(६०)

कुम्भो अठावीस हजार जानो,
इक्साठ लक्षेक करोड़ संख्या,
ली अङ्क में थी प्रभु की सुमुद्रा,
ईशान का वासव पीठ बैठा।

(६१)

शकेन्द्र ने वैक्रिय लब्धि से यों,
चौ श्वेतवर्णे वृषभा विकुर्वे,
औ शृंग द्वारा अभिषेक देखे,
आश्चर्य होता सुर देवियों को।

(६२)

वे नाथ का अंग उपांग पोंछे,
की अंगभूषा वह थी अनोखी,
औ पीठिका पे प्रभु को बिठाये,
मुद्रा सुहानी मन को लुभाती।

(६३)

'वामा' सती नन्दन को विलोके,
आनन्द उर्मी उमड़ो सुरों में,
तेवीसवें ईश जगीश पाये,
गाते बजाते प्रभु को बधाये।

(६४)

द्रव्याष्ट से पूज पदाम्बुजों को,
पश्चात् नमस्कार किया सभी ने,
चित्रावली की, अठ मंगलों की,
वे पुष्पवर्षा करते खुशी में।

(६५)

हे नाथ! जीवें गिरि आयु जैसे,
उद्धार कीजे जग-जीव दुःखी,
अशान्तता से उनको बचावें,
की प्रार्थना वासव औ सुरों ने।

(६६)

यों अप्सराएँ कर नृत्य प्यारा,
आनन्द में मङ्गल गीत गाती,
'वामा' सती का यह पुत्र प्यारा,
देखो हमारे मन को लुभाता।

(६७)

मेरूगिरी पाण्डुक-वाटिका में,
वृक्षावली में नव-जात पुष्पो,
आती सुगंधी वन वायु संगी,
'वामा' सती के सुत पाद छूती।

(६८)

रात्री अनूपा वदि पौष की थी,
सर्वत्र निर्वद्य प्रवृत्ति छाई,
था रम्य जन्मोत्सव जो सुरों का,
यों खोल आँखें नभ देखता था।

(६९)

बोला तभी इन्द्र सुर देवियों से,
आदेश नन्दीश्वर द्वीप का है,
अष्टाह्निका उत्सव कार्य होगा,
आओ सभी वाह्न ले वहाँ पे।

(७०)

द्रुतविलम्बित

अमर द्वीप मुदामन आगये,
रुचिर चार जिनालय है वहाँ,
सुरसुरी जिन पूजन भक्ति में,
कर महोत्सव चौंसठ इन्द्र ने।

(७१)

इन्द्रवज्रा

लौटा तभी इन्द्र वणारसी को,
ले के करों में प्रभु को वहाँ से,
माँ कक्ष में आत्मज को सुला के,
माँ की अवस्वापिनी नींद लेली।

(७२)

हे दानवों ! किन्नर नाग गुह्यकों,
आदेश मेरा तुमको यही है,
जो भी करेगा प्रभु की अवज्ञा,
तत्काल दूँगा उसको सजा में।

(७३)

सेवा करेगा प्रभु को सदा ही,
सत्कार सन्मान सदा करेगा,
वो ही दया पात्र तभी बनेगा,
यों शक्र बोला, पवि हाथ में ले।

(७४)

अंगुष्ट में अमृत छोड़ प्यारा,
श्रीदाम रक्खा वर खेलने को,
'वामासती' औ प्रभु के पदों में,
की शक्र ने वन्दन भाव पूर्ण।

पृष्ठ संख्या २१६

(७५)

वाराणसी में शुभ सूचना हो,
कल्याण के हेतु सुद्रव्य वर्षा,
भूपाल के आँगन में दिखाता,
शक्रेन्द्र नन्दीश्वर थे पधारे ।

(७६)

द्रुतविलम्बित

विविध भाँति अनूप बनारसी,
जगतवल्लभ के गुण गा रही,
बन गई वह पावन नाथ से,
कमल हर्षित ज्यों रवि राजते ।

(७७)

मालिनी

सकल गगनगामी यान विद्याधरों के,
अमर अमरियाँ भी गीत गाती विनोदी,
पहर सरस चौथा जीवयोनि जगाता,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राण प्यारा ।

(७८)

ललित सुभग बाला रम्य सौभाग्य ले के,
मुख पट हर आई विश्व के आँगने में,
नियति कनकवर्णी पूर्व की चारु आभा,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राण प्यारा।

(७९)

नृप घर प्रभु आये सौम्य मुद्रा जिन्हों की,
निरख निरख आँखें तृप्त होती हमारी,
हरष हरष में वे पुष्प की वृष्टि करते,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राण प्यारा।

(८०)

नृप-सुत-मुख-शोभा देख के अंशुमाली,
अब जग हित होगा ईश तेवीसवें हैं,
नत कर रवि राजा यान आगे बढ़ाता,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राण प्यारा।

(८१)

सिर पर कस श्यामा भाग्यवानी दिखाती,
शुक सम वर नासा कर्ण औ भाल भाता,
नयन-कमल लोला श्याम भौंहें सुहाती,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राण प्यारा।

(८२)

मुखरदतति ठुड्डी रम्य बिम्बोष्ट शोभा,
त्रिवलिवर ग्रीवा है कंबु कन्धे बलीष्ठी,
भुजबल द्वय औ वक्षस्थली केशरी सी,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राण प्यारा।

(८३)

कर कमल तली में चिह्न रेखा पड़ी है,
सर नद ध्वज है चित्रावली ऊर्ध्व रेखा,
नवल अंगुलियां अंगुष्ठ पीयूष वाला,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राण प्यारा।

(८४)

उदर, कटि अनूपा मानवों को लुभावें,
सुभग रुचिर जङ्घा जीमनी पे सुहाती,
नग छवि वर है, आवर्त रोमावली में,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राणप्यारा।

(८५)

अनुपम घुटने दोनों अनूठे दिखाते,
चरण अंगुलियाँ थीं उत्पलों सी सुहानी,
चरणतलि गुलाबी पद्मा रेखा दिखाती,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राणप्यारा।

(८६)

मुख-कमल विकासी देह है नीलवर्णी,
मृदुल अवयवों सर्वाङ्ग केली कला में,
मणिमय रचना पल्यङ्क में नाथ सोते,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राण प्यारा।

अति प्रमुदित है 'वामा सती' पुण्यशाली,
अति अनुपम कर्तृ गङ्ग कल्लोल केली,
हरष नव जगा वाराणसी की प्रजा में,
युग युग सुत जीवो भूप का प्राण प्यारा।

★

पृष्ठ संख्या २२१

सर्ग १०

*

(१)

इन्द्रवज्रा

न्यायालयालंकृत भूप से था,
सामन्त मन्त्री परिवार बैठे,
आई मुद्रा चन्द्र कला सभा में,
दी हर्ष में नन्दन को बधाई।

(२)

आनन्द छाया सबको सभा में,
भूपाल ने राजमणी चरी को,
सर्वाङ्ग भूषा उसको दिलाई,
लौटी उसी काल सुभेट ले के।

(३)

आदेश पा के नृप का चरों ने,
उद्घोषणा की पुर में खुशी से,
चैत्यालयों को फिर से सजाओ,
पूजा रचाओ जिनदेव ही की।

(४)

छोड़ो अभी जा कर बन्दियों को,
बोलो उन्हें तस्कर वृत्ति त्यागें,
शिक्षा उन्हें देकर दान दे दो,
चोरी नहीं वे फिर से करेंगे।

(५)

व्यापारियों से कह दो अभी ही,
छोड़ा तुम्हारा कर जो लगा था,
दो दुःखियों को पट-अन्न पूरा,
खोलो इसी काल सुदानशाला।

(६)

पाते सदा भोजन वस्त्र दुःखी,
आते उन्होंकी बन तृप्त बोले,
हैं दुःखियों का दुःख में सहारा,
आया हमारा प्रतिपाल प्यारा।

(७)

ऐसी व्यवस्था करके चरों ने,
भूपाल का पूर्ण निदेश पाला,
यों भृत्य नाचें खुशियाँ मनाते,
आनन्द में केसर रंग डालें।

(८)

राज्यांग ने मानव मुदमना थे,
थे ढोल थाली करताल बाजे,
जो भी लखे दान करे उन्होंको,
स्वामी हमारा बहुकाल जीवो।

(९)

पा पौरवासी शुभ सूचना को,
ले भेंट जाते नृप की सभा में,
वांजित्र बाजे अति श्रेयकारी,
उत्साह में मानव प्रेम जागा।

(१०)

यों पौरवासी ललना लवंगी,
शृंगार-भूषा करके नवोढ़ा,
सानन्द में ले सुसहेलियों को,
जाती दिखाती रनिवास में थी।

(११)

थी गीत गाती नृप पुत्र प्यारा,
स्वामी हमारा बहुकाल जीवें,
इक्ष्वाकुवंशी जग-अंशुमाली,
होगा हमारा प्रतिपाल प्यारा।

पृष्ठ संख्या २२५

(१२)

प्यारा अनोखा सुत गोद में है,
वामा सती है बहु भाँति धन्या,
वाराणसी की यह भूमि धन्या,
बाला नवोढ़ा नृप–द्वार आती।

(१३)

यों देखती है नृप-द्वार शोभा,
है छाँटना आँगन में सुगन्धी,
है रत्न मोती पट स्वर्ण राशी,
वर्षा हुई है यह तो निशा में।

(१४)

सानन्द सूर्योत्सव को मना के,
'वामा' सती ने सुत को कहा यों,
हे पुत्र ! तू सूर्य समान होना,
तू मानवों का उर-हार होना।

(१५)

भूपाल भद्रासन थे बिराजे,
बैठे अमात्यादिक और श्रेष्ठी,
आये हुए थे नृप पार्श्ववर्ती,
थी राज मौहूर्तिक-मंडली भी।

(१६)

अन्तःपुरी का वह प्राणप्यारा,
ले के चरो भूप समीप आई,
उत्संग में आत्मज को बिठा के,
लौटी सुभद्रा रनिवास में थी।

(१७)

बोले पुरोधा उठके सभा में,
है भूप की आज सुरम्य गोदी,
केली करें नन्दन प्राण प्यारा,
आँखें हुई तृप्त सभासदों की।

(१८)

सामन्त सेनाधिप आदि बैठे,
आँखें लगी थी नृप-पुत्र पे ही,
वे सोचते मानस में सभी यों,
सम्राट होगा यह तो हमारा।

(१९)

ऊठी सभा हर्षित भाव में थी,
ले भूप आये सुत को स्वयं ही,
'वामा' जहाँ पे स्थित थी खुशी में,
भूपाल से नन्दन ले लिया था।

(२०)

ले गोद में चारु कपोल चूमे,
वक्षस्थली ले कर प्यार करती,
थे गोद में ले नृप भी हँसाते,
यों मोद में काल व्यतीत होता।

(२१)

झूले झुला के प्रिय लाड़ले को,
झूले झुलाती अरु गीत गाती,
यों बोलती हास्य विनोदकारी,
लो नींद मीठी मम पुत्र प्यारे।

(२२)

मामा तुम्हारा बहु भेंट लावे,
मालामणी भी कटिमेखला भी,
शृङ्गार के हेतु सुरम्य लावें,
लावे सुपक्वान विभिन्न मेवा।

(२३)

मामी तुम्हारी मुख चन्द्र देखे,
हो के खुशी में मुख-चन्द्र चूमे,
गोदी बिठा के तुझको रमावे,
औ' पालने में तुमको मल्हावे।

(२४)

हे पुत्र ! तू चौदह स्वप्न वाला,
थी जन्म-वेला अति मोदकारी,
छप्पन देवी मिल गीत गावें,
है निर्झरों से अभिषेक तेरा।

(२५)

पल्यङ्क है अर्पित देवियों से,
है रत्न से मण्डित रम्य शोभा,
डोरी लगी रेशम की इसी में,
छुम्छुम् बजे किंकिनियाँ सुहानी।

(२६)

बोले सुवाणी तुतली सुहानी,
प्यारी लगे, चित्त प्रसन्नकारी,
होते खड़े भूतल बैठ जाते,
भूपाल रानी हँसते हँसाते।

(२७)

श्रीदाम से खेल करे स्वयं ही,
दे अंगुली मात उन्हें चलाती,
घूमे जहाँ मंजुल चन्द्रशाला,
रानी दिखाती नभशोण संध्या।

(२८)

दौड़े स्वयं ही जननी बुलाती,
गोदी बिठाती जब दौड़े आते,
यों प्यार वामा करती उन्हें थी,
जो मात्र का तू बनना हितैषी।

(२९)

ज्यों बीज का चन्द्र शनैः शनैः से,
उत्सेध होता नृप-पुत्र भी त्यों,
आई अवस्था युवराज वाली,
अन्तःपुरी में मुदभाव छाया।

(३०)

आमोद में भूप बिराजते थे,
मन्त्री व्यवस्था बतला रहा था,
है ना किसी भाँति कमी कहींभी,
सारी प्रजा है मुद में, कृपा से।

(३१)

स्वामी पधारें परिवार ले के,
आगन्तुकों सज्जन वर्ग सारा,
अच्छी घड़ी है अब घूमने की,
तय्यार है यान अमात्य बोला।

(३२)

थी वाटिका निर्मित निर्भरों से,
भूपाल आये रथ रम्य राजे,
थे और भी राज-सुकर्मचारी,
आये वहाँ राजकुमार खेले।

(३३)

उपजातिवृत्त

पौधे सुगन्धी तरु थे अनेकों,
मयूर मैना शुक थे दिखाते,
थी क्यारियों रम्य द्रुमावली की,
पिकादि पक्षी कल नाद कूँजे।

(३४)

धारागृहों में जल मञ्जु भी था,
चलें फुहारें उस वाटिका में,
क्रीड़ा करें रम्य मिलिन्द सारे,
गुलाब की कुड्मल सौरभी ले।

(३५)

ये वृक्ष सारे फल से झुके हैं,
बड़े बड़े वृक्ष रसाल के भी,
सेवाव्रती हो कर के खड़े हैं,
जहाँ बटोही सुख भोगते हैं।

(३६)

इन्द्रवज्रा

था वायु मन्दं मलयागिरी सा,
भूपाल सामन्त प्रधान मन्त्री,
बैठे सभी चित्त प्रसन्न हो के,
वे राजगोष्ठी करते खुशी में।

(३७)

भू भाग है सुन्दर खेलने का,
आये हुए अन्य कुमार खेलें,
दौड़े वयस्कों पर गेंद लेने,
ताली बजाते जब जीत होती।

(३८)

वाराणसी की जनता खड़ी है,
देखें जहाँ 'पार्श्वकुमार' खेलें,
चातुर्यओं स्फूर्ति सुअङ्ग वाली,
आमोद देती प्रतिभा उन्होंकी।

(३९)

बोले कलाचार्य कुमार को ही,
बाहूबली हो सब शास्त्र ज्ञाता,
है आम्र की लुम्बक में सुकेरी,
नीचे गिरे ना निज हाथ में लो।

(४०)

था कौतुकी भाव कुमार का भी,
तत्काल ही गांडिव को उठाया,
वीरत्व से खींच धनु त्वचा को,
छोड़ा तभी बाण कुमार ने ही।

(४१)

बाणोपरी बाण चला-चला के,
केरी उतारी गिरने न दी थी,
ली थी करों में बन के विनोदी,
यों देख के भूप बना प्रमोदी।

(४२)

वाणावली ज्यों शर फेंकते थे,
त्यों बाण फेंके युवराज ने भी,
छाता बना था नभ में सरों का,
देखें अनेकों करते अचम्भा।

(४३)

थे सोचते दर्शक चित्त में यों,
ऐसी कलाएँ किसने सिखाई ?
छोटी अवस्था इनकी सुहानी,
है अङ्ग प्रत्यङ्ग प्रभावशाली।

(४४)

है और भी राजकुमार सङ्गी,
आभा न ऐसी उनको मिली है,
आई कहां से इनमें कलाएँ,
जन्मान्तरों की यह देन ही है।

(४५)

आनन्द देती प्रतीभा इन्होंको,
गम्भीर है वीर सुधीर देखो,
दानी दया सागर दीन-बन्धु,
बातें अनेकों चलती प्रजा में।

(४६)

बैठी हुई राज सभा वहाँ पे,
आलोकती राजकुमार को थी,
निर्दम्भ हो के जय बोलते थे,
हो पार्श्व लोक त्रयत्रासहारी।

(४७)

होते खुशी थे नभ के बिहारी,
देखी कला राजकुमार की यों,
सूर्यास्त का काल समीप ही था,
आकाश भी लोहित होरहा था।

(४८)

लौटे सभी मोद मना वहाँ से,
आवास आये युवराज राजा,
वाराणसी की जनता खुशी में,
थी नारियाँ मंगल गीत गाती ।

(४९)

चामर

अश्वसेन भूपराज-कार्य में अमात्य को,
दी सचेतना न हो कमी किसी प्रकार की,
हो कमी उसे मिटा प्रजा प्रमोद में रहे,
राज–कोष पूर्ण है, कुमार पुण्यवान है ।

(५०)

हैं कुमार धीर वीर औ प्रचण्ड सैन्य में,
देख के कुमार का अभूत शौर्य दान के,
देव–किन्नरों प्रसन्न हो रहे वहाँ महा,
म्लेच्छ-भूप से प्रसेनजीत को बचा लिया ।

★

पृष्ठ संख्या २३८

सर्ग ११

(१)

इन्द्रवज्रा

उद्यान है रम्य कुशस्थली का,
स्वामी हमारा बहु नीति ज्ञाता,
मैं क्या करूँ भूपति की प्रशंसा,
दुःखी जनों का वह है हितैषी।

(२)

दो पुत्र है एक अनूप कन्या,
थी हो गई यौवन में अनूठी,
भूपाल चिन्तातुर है उसी से,
अन्तःपुरी भी यह सोचती है।

(३)

द्रुतविलम्बित

नगर की मिल संग सहेलियाँ,
सब गईं रमने उस कुञ्ज में,
विविध पुष्पलता इठला रही,
वर बसन्त बहार समीर था।

(४)

कुतुहली उनका मन था बना,
हृदय कोमल में वह वार था,
कमल पद्म सरोवर में खिले,
भ्रमर गुञ्जित थे सुपराग में।

(५)

तरुलता पर नाद विहङ्ग का,
कह रहा सुन गीत प्रभावती,
मधुर किन्नरियाँ मिल गारही,
कुँअर 'पार्श्व' समान कहीं नहीं।

(६)

रुचिर निर्मित चैत्य तड़ाग में,
सब चली, उस ओर शनैः शनैः,
सर छटा लख हर्षित हो रही,
कह रही लहरें कुछ थी उन्हें।

(७)

छनन छुम वर नृत्य सुहा रहा,
मधुर गायन किन्नरियाँ करें,
उस जिनालय सन्मुख वृक्ष था,
स्थित हुई सबही तरु छाँह में।

(८)

चामर

अश्वसेन भूप पुत्र कान्तिवान है मुदा,
वीर औ सुधीर दीनबन्धु वे दयार्द्र हैं,
शास्त्र शस्त्र में प्रवीण औ कलानिधान हैं,
विश्व में नहीं कुमार के समान और हैं।

पृष्ठ संख्या २४१

(६)

हैं क्षमानिधान पुण्यवान दानवीर वे,
शुभ्र कीर्ति है, त्रिलोक में गुणानुवाद की,
नाचती रमावती शरीर को सुअप्सरा,
गा रही वराणसी कुमार की गुणावली ।

(१०)

द्रुतविलम्बित

युगल जोड़ मिले सुप्रभावती,
मिल सके सहवास कुमार का,
अवर ना दिखता युवराज है,
अमरियाँ इस भाँति सुना गई ।

(११)

कह रहा शुक यों तरु डाल से,
सुन रही सब थी सखियाँ वहाँ,
कुंवर योग्य प्रवीण प्रभावती,
सब प्रसन्न हुई शुक बात से ।

(१२)

कुँअरि से सखि यों कहने लगी,
उदय भाग्य तव हुआ है सखी,
पति मिला सुकुमार वाराणसी,
इस प्रकार सभी मिल बोलती।

(१३)

कुँअर ही किस भाँति मिले मुझे,
विकल चित्त उदास प्रभावती,
कब मिले कब आनन देख लूँ,
रट लगी मन मन्दिर में उसे।

(१४)

वह बनारस–वल्लभ है कहाँ ?
कुँअरि का मुख था कुंभला गया,
लख उसे सखियों कहने लगी,
घर चलें रवि अस्त समीप है।

(१५)

नगर को सब लौट गई तभी,
विपिन मध्य घटी घटना कही,
सकल वृत्त सुना रनिवास ने,
जनक औ जननी खुश थे हुए।

(१६)

नृपति ने पुरुषोत्तम से कहा,
मम सुता अब योग्य विवाह के,
कुँवर है अति रम्य वाराणसी,
मिल गई वह थी शुभ सूचना।

(१७)

चल वहाँ पर पार्श्वकुमार से,
कुँअरि का करना शुभलग्न है,
स्थित वहाँ नृप का परिवार था,
सुन विचार खुशी सबको हुई।

पृष्ठ संख्या २४४

(१८)

सचिव ने नृप की सुन बात को,
मन प्रसन्न कहा कर नम्रता,
वचन सत्य नरेश्वर आपका,
त्वरित ही उसकी सुविधा करूँ ।

(१९)

कर रहे इस भाँति विचार थे,
वनचरों तब आ करके कहा,
यवन सैन्य महान दिखा रहा,
पुर व्यवस्थित हो अरु द्वार थी ।

(२०)

कटक आ कर भूप कलिंग का,
वह उपद्रव था करने लगा,
कर रहे प्रतिकार प्रसेनजित,
विकट संकटग्रस्त कुशस्थली ।

(२९)

यवन भूप प्रकोप प्रचण्ड है,
नृप सुता नृप से वह माँगता,
यह अयोग्य बनाव बना वहाँ,
किस प्रकार परास्त उसे करें।

(३०)

इसलिए चर है तव सामने,
सचिव का पुरुषोत्तम पुत्र हूँ,
कुशलक्षेम यहाँ तक आ गया,
अधिक था पथ में डर शत्रु का।

(३१)

चामर

है प्रसेनजीत की 'प्रभावती' सुता युवा,
आपके कुमार पे प्रसन्न है सुचित्त से,
यों प्रसेनजीत थे अमात्य से विचारते,
जा बनारसी पुरी वहीं करूँ विवाह को।

(३२)

जो विचार थे महीप के सभी रहे वहीं,
रक्षणार्थ में महीप ! औ प्रजा सभी लगे,
है प्रभावती उदास औ विकल्प चित्त है,
चैन है नहीं उसे न खान पान में रुचि ।

(३३)

अश्वसेन भूप न्याय-धाम में बिराजते,
है सुना प्रसेनजीत भूप कष्ट में पड़े,
मैं सहायता करूँ लड़ूँ कलिंग भूप से,
शत्रु बांध लूँ प्रचण्ड नागफाँस छोड़ के ।

(३४)

इन्द्रवज्रा

सोचे महीपाल कुशस्थली का,
तत्काल जाना मुझको वहाँ है,
सामन्त मन्त्री सुभटों सभी थे,
आदेश सैनापति को दिया था ।

(२६)

क्यों आज भेरी-रव है यहाँ पे,
ऐसा चरों से युवराज बोले,
आये सभा में नृप से कहा यों,
हे तात ! है क्या यह युद्ध कैसा ?

(२७)

आरूढ़ है शत्रु कुशस्थली पे,
वो कष्ट देता मम मित्र को है,
कर्त्तव्य मेरा सहयोग देना,
जा के बचाना सज सैन्य सारा ।

(२८)

बोले तभी पार्श्वकुमार स्वामी,
है आपका काम नहीं वहाँ पे,
आज्ञा मुझे हो इस हेतु देवें,
जाऊँ वहाँ मैं अरि बाँध लाऊँ ।

(२९)

बैरी नहीं निर्बल, है दुरात्मा,
है म्लेच्छ-सेना बहु शस्त्रधारी,
हे प्राणप्यारे ! तुझको न जाना,
है काम मेरा इस युद्ध में तो।

(३०)

इक्ष्वाकुवंशी युवराज बोले,
हे तात ! आज्ञा मुझको दिलावें,
चिंता नहीं आप करें जरा भी,
शिक्षा उन्हें देकर शीघ्र लोटूँ।

(३१)

सामन्त मन्त्री कहने लगे थे,
आज्ञा करो नाथ ! कुमार को ही,
विध्वंस होगा अरि सैन्य सारा,
विश्वास रक्खें जय आपको है।

(३२)

बाहूबली है युवराज भारी,
वीरत्व है अर्जुन सा दिखाते,
शङ्का नहीं है हमको जरा भी,
आज्ञा दिलावें सबने कहा था।

(३३)

सामन्त से भूपति ने कहा यों,
जाओ खुशी से युवराज को ले,
सन्नद्ध है सैन्य समाज सारा,
प्रस्थान का काल सुरम्य जानो।

(३४)

संग्राम की ओर कुमार जाते,
सौधर्म स्वामी यह जान आये,
तत्काल बोले युवराज से यों,
तैयार मेरा रथ है बिराजें।

(३५)

ले जायगा शीघ्र कुशस्थली को,
है सूत मेरा तब संग में ही,
होके रथारूढ़ कुमार वीरः,
तत्काल ही में नभ से पधारे।

(३६)

घेरा हुआ दुर्ग कुशस्थली का,
आतङ्क में थे पुर के निवासी,
निर्यात आयात सभी रुका था,
शत्रु सैना पर यान घूमा।

(३७)

आकाश से ही लख शत्रु सैना,
सैना स्व की थी उसमें पधारे,
उच्चासने पार्श्वकुमार बैठे,
सामंत मन्त्री स्थित थे सभा में।

(३७)

आलोक सारी स्थिति को विचारा,
तत्काल भेजा निज दूत को था,
था दूत भी निस्पृह भाव वाला,
गम्भीर वाचाल प्रवीण ज्ञाता ।

(३८)

निःशङ्क हो दूत ! निवेश आता,
देखा सभी भूप कलिंग ने था,
है दूत कोई नृप सोचता था,
बैठी सभा थी यवनों जनों की ।

(३९)

जा के सभा में कहने लगा यों,
वाराणसी के युवराज ने ही,
भेजा मुझे है, सब द्वंद्व छोड़ो,
संहार क्यों व्यर्थ मनुष्य का हो ।

(४०)

जो क्षेम चाहो तब तो, उन्होंका,
सन्देश स्वीकार करो, नहीं तो,
होगा महा युद्ध बिनाश होगा,
स्वीकार लो शर्त प्रहर्ष होगा।

(४१)

तू दूत है रे! इसके लिए मैं,
ना दण्ड देता अब छोड़ता हूँ,
भेजा तुझे है उसको सुनाना,
ये बीर हैं भूप कलिंग वासी।

(४२)

तेरी नहीं ताकत जीतने की,
तू ने किये पाप कलङ्क धो ले,
स्वामी हमारा अति ही कृपालु,
आपद्गतों का वह है सहारा।

(४४)

रे ! दूत तेरा वह कौन स्वामी,
भेजा यहाँ है उसने न सोचा,
सोये हुए को उसने जगाया,
ले शस्त्र को खींच महीप बोला ।

(४५)

है नाथ मेरा बलवान भारी,
ना शक्ति तेरी कुछ काम आवे,
वे युद्ध में गर्व उतार देंगे,
बन्दी करेंगे क्षण मात्र में ही ।

(४६)

आवेश में म्लेच्छ महीप बोला,
रे दूत ! तू व्यर्थ प्रलापकारी,
लज्जा न आती बन दूत आया,
मेरी सभा में बकवाद करता ।

(४७)

आये उसी मार्ग पधार जाओ,
होगी कुटुम्बी जन में खुशाली,
संग्राम का क्षेत्र विनाश कर्ता,
होता महानाश प्रजाजनों का।

(४८)

रे ! तू चला जा, अब सामने से,
भेजा तुझे भूल करी उन्होंने,
जा के सुना दे युवराज को तू,
तेरी नहीं वाक्-पटुता चलेगी।

(४९)

था वृद्ध मन्त्री उसकी सभा में,
सन्देश श्री पार्श्वकुमार का है,
हैं चक्रवर्ती सम भाग्यशाली,
तत्काल बोला—घर लौट जावें।

(५०)

वाराणसी का युवराज प्यारा,
सौंदर्य लावण्य स्वरूपधारी,
गाम्भीर्य, कारुण्य दयानिधे हैं,
फैली प्रभा विश्व प्रमोदिनी।

(५१)

मेरा सभी को कहना यही है,
विद्रोह ना हो इस भाँति सोचें,
देखा नहीं क्यों नभयान घूमा,
वे देख सैना अपनी पधारें।

(५२)

फैली हुई है यश कीर्ति भारी,
संग्राम में वीर प्रचण्ड जानो,
है शक्तिशाली इसमें न शङ्का,
औ हार होगी अपनी यहाँ पे।

(५३)

बोला कलिंगाधिप मन्त्रियों से,
प्रस्ताव स्वीकार अमात्य का है,
मांगें क्षमा उत्तम भावना से,
हो शीघ्र ही काम चले पदों में।

(५४)

लौटा तभी दूत वाराणसी का,
आया सभा में खुश बात बोला,
सन्देश सेनापति ने दिया यों,
हैं आ रहे भूप कलिंग मन्त्री।

(५५)

बोले विवेकी युवराज राजा,
कर्त्तव्य पालो निज शिष्टता है,
लेलो गले से नृप का कुठारा,
ना शत्रु हैं, आसन दो इन्होंको।

(५६)

मन्त्री उठे, स्वागत हेतु जाके,
जो शस्त्र कन्धों पर था हटाया,
माँगी क्षमा भूप कलिंग ने थी,
स्वामी बिराजे लख पीठिका पे।

(५७)

मन्त्रीगणों ने नृप को बिठाये,
आनन्द छाया द्वै सैन्य में था,
थे मन्त्रियों और प्रसेनजित्,
संधी हुई थी इनमें अनूठी।

(५८)

शार्दूल विक्रीडित

छाया मोद प्रसेनजीत मन में, बोला पधारो पुरी,
होगा पावन आँगना, कुँअर की जो हो दया दास पे,
स्वीकारो मम प्रार्थना-अतिथियों का क्या करूँ स्वागतं,
मानूँगा उपकार, आप उपकारी हैं सभी जीव के।

(५६)

द्रुतविलम्बित

सुखद थी, सुन बात कुमार ने,
तब कहा मुझको रहना नहीं,
समय है उपयुक्त प्रयाण का,
कुँअर की जय बोल सभा उठी।

(६०)

मत्त गजेन्द्र

जग के हित में करुणा उर में,
अनुराग दयाधर के मन में,
मुद में अरि को तज के रण में,
फिर नाथ बनारस लौट गये।

★

पृष्ठ संख्या २५६

सर्ग १२

(१)

इन्द्रवज्रा

आये, गये पार्श्वकुमार राजा,
लौटी तभी भूप कलिंग-सेना,
खोला गया दुर्ग कुशस्थली का,
आनन्द मानें सब पौरवासी।

(२)

बाला नवोढ़ा मिल मण्डली में,
गाती नवा गीत वाराणसी का,
धन्या बनी पार्श्वकुमार से तू,
गङ्गा पवित्रा बहती सदा से।

(३)

अन्तःपुरी में मुदभाव जागा,
मां धातृ बोली हँस के प्रभा को,
क्यों है कुमारी तुझमें उदासी,
यों पूछते थे मिल दास दासी।

(४)

चामर

अश्वसेन के कुमार तो गये वाराणसी,
भूप तो विवाह के लिए तैयारियाँ करें,
अन्तरंग तू प्रफुल्ल तो बना अरे! अलि,
यों सभी सहेलियाँ विनोद में उसे कहे।

(५)

इन्द्रवज्रा

ऐसी सुनी बात प्रभावती ने,
जाना मुझे शीघ्र वाराणसी को,
मुस्कान छाई मुख पे सुहानी,
शृंगार भूषा करने लगी थी।

(६)

ले के व्यवस्था सब साथ में ही,
वाराणसी आ सप्रसेनजीतः,
औ अश्वसेनाधिप से मिले थे,
अभ्यर्थना की नृपराज को ही।

(७)

आशा लगा के यह दास आया,
स्वीकार लें भेंट प्रभावती की,
दूल्हा बने पार्श्वकुमार राजा,
इच्छा करोगे परिपूर्ण मेरी।

(८)

औ अश्वसेनाधिप ने कहा था,
वैराग्य से राग कुमार का है,
पूछें उन्हें जा सुर वाटिका में,
आये, जहाँ थे युवराज बैठे।

(९)

सोल्लास में भूप प्रसेनजीतः,
बोले कृपा हो युवराज राजा,
ज्यों शत्रुओं से हमको बचाये,
वैसी कृपा हो मुझपे तुम्हारी।

(१०)

हे पूज्य ! संसार असार जानो,
इच्छा नहीं है जगमञ्च सेवूँ,
बोले तभी भूप प्रसेनजीतः,
स्वीकारियेगा यह प्रार्थना है।

(११)

बोले नहीं औ युवराज राजा,
मुस्कान देखी मुखचन्द्र को थी,
इक्ष्वाकुवंशी परिवार बोले,
है मान्य जो ब्याह प्रभावती का।

(१२)

श्री अश्वसेनाधिप ने कहा यों,
सम्बन्ध होगा खुशियां मनावें,
तय्यारियाँ शीघ्र विवाह की हों,
दे लग्नपत्री सब भूप आवें।

(१३)

आनन्द छाया परिवार में था,
वाजित्र बाजे नृप द्वार पे हैं,
अन्तःपुरी थी शुभ गीत गाती,
वामा सती मञ्जुल भाव में थी।

(१४)

आई घड़ी है शुभ लग्न वाली,
चौरी बिराजे युवराज राजे,
डाला गले हार प्रभावती ने,
की पुष्प-वर्षा कुलदेव ने थी।

पृष्ठ संख्या २६४

(१५)

विद्या - विनम्रा हि प्रभावती थी,
वामासती के पद में नमी थी,
आशीष दी नम्र हृद्दाम से थी,
इक्ष्वाकुवंशी कुलदीपिका हो।

(१६)

औ याचकों को बहुदान बाँटा,
वस्त्रादि को पा जय बोलते थे,
दीर्घायु हो पार्श्वकुमार राजा,
जोड़ी बनी सारस के समाना।

(१७)

मामा कुटुम्बी प्रिय मित्र आये,
दी पार्श्ववर्ती मिल के नृपों ने,
थी भेंट भूषा बहुमूल्य वाली,
थे भूप आगन्तुक धाम लौटे।

(१८)

काशी-निवासी उनको बधायें,
राजी हुए लोग विलोक जोड़ी,
खेलें सदा चौपड़ पास दोनों,
केली करे वे सुरवाटिका में।

(१९)

मन्दाक्रान्ता

आते जाते कुँअर नित ही रम्य गंगा किनारे,
देवों से निर्मित कुसुम की वाटिका थी अनूठी,
गन्धी आती मधु महकता कूकती कोकिला यों,
आओ रे! दर्शन हित यहाँ हर्ष में पौरवासी।

(२०)

आनन्दावास रुचिर वहाँ था बना वाटिका में,
रम्याटारी पर टहलते भूप के प्राण प्यारे,
बैठे बैठे रमत रमते पार्श्ववर्ती वयस्कों,
राजी होते कुँअर लख के बाल-लीला सुहानी।

(२१)

जाते देखी नगर - ललना पौर के कुञ्ज की ओर,
भृत्यों से पार्श्वकुँअर पूछे ये कहाँ जा रही है,
बोले थे भृत्य प्रभुवर को साधु आया यहाँ है,
जाती है दर्शन-हित वहाँ थाल में भेंट ले के।

(२२)

है कैसा साधु परिचय दो औ बताओ कहानी,
बोला था वृद्ध चर हँस के मैं कहूँगा कहानी,
देखा है गङ्ग तट बसा गाँव खेड़ा उसी में,
जन्मा था विप्रवर घर में अङ्ग से था कुरूपी।

(२३)

कष्टों को मात पितु सह के, मृत्यु को पा गये थे,
थे सम्बन्धी जन, न उसपे की दया पालने की,
दुःखी हो वो घर घर गया ना सहारा मिला था,
रोता जाता गलि गलि सदा घूमता वस्त्र जीर्णा।

(२३)

वसन्ततिलका

दुःखी बना कठ अरे ! कर कर्म भारी,
ना अन्न पेट भर के मिलता घरों में,
बक्राङ्ग देख उसको शिशु बोलते थे,
कङ्काल बालक बना कठ नाम कैसा ?

(२४)

श्रीमन्त–नन्दन विभूषित भूषणों से,
देखे उन्हें कठ सदा उद्विग्न होता,
कर्ता विचार कठ कर्म किये अघोरी,
माता पिता गत हुए अब हूँ भिखारी।

(२५)

द्रुतविलम्बित वृत्त

तप करूँ अब तो प्रभु को भजूँ,
तब कहीं नर-जन्म सुधार हो,
यह विचार हुआ उसका तभी,
बन गया कठ तापस गङ्ग पे।

(२६)

मन्दाक्रान्ता

वो तापे घोर तप वन में पञ्च धूनी लगा के,
स्वामी देखे चल कर वहाँ कौनसी है तपस्या ?
स्वामी ने भी हँस कर कहा, अश्व ला भृत्य मेरा,
जावें देखें किस तरह से तापता है तपस्या।

(२७)

हो अश्वारूढ़ कुँअर गये ले चरों को वहाँ पे,
बैठा था तापस तप रहा पंच धूनी लगा के,
आते जाते जन रमणियाँ भक्त बैठे दिखाते,
बैठे थे शिष्य पुरजन से भेंट लेते खुशी में।

(२८)

भस्मी को धार तन पर रुद्राक्षमाला गले में,
ढोंगी ध्यानी बन कर अरे ! धूर्तता क्यों जनों को,
योगी के लक्षण न तुझमें, देखता हूँ कुयोगी,
माया में चित्त लिपट रहा, साधु कर्त्तव्य ये ना।

(२९)

रे रे ! तू राजकुँअर नहीं जानता है तपस्या,
कैसे होती यह समझना है नहीं ज्ञान तेरा,
है तेरा तो बचपन अभी बात मोटी बताता,
खेलाना अश्व नित प्रति है काम तेरा यही तो।

(३०)

रे मायावी इस कपट से जन्म तूने गंवाया,
क्यों तू अज्ञान तप तपता व्यर्थ ही कष्ट पाता,
रे, रे ! संसार भ्रमण मिटे त्याग के मार्ग से ही,
तेरे में त्याग न दिख रहा तू महा है प्रपञ्ची।

(३१)

है तू भूपाल-कुँवर, कहूँ क्या तुझे ! जा यहाँ से,
ज्यादा क्यों बात असमझ में बोलता जा रहा है,
है तेरी बुद्धि बचपन की राज्य कैसे करेगा ?
सन्तों को भोजन सरस दे तू दयावन्त राजा।

(३२)

आये मेरे निकट तुम हो भेंट जो हो चढ़ा जा,
माथापच्ची न कर मुझसे क्या मुझे ज्ञान देता,
रे, रे ! तू साधू कपट दिखता, लोग को वंचता है,
तेरी माया लख कर सभी आ रहे पौर में से ।

(३३)

है क्या जादू अजब तुझमें कौनसी शक्ति पायी ?
खा, पी, बैठा नगर जन की, भेंट मिष्टान्न मेवा,
क्रूरात्मा है निठुर बन के लाल आँखें बताता,
क्या है ? हिंसा न समझ रहा है दया ना तुझे तो ।

(३४)

क्यों ऐसी बात तुम करते, है न शोभा तुम्हारी,
तेरी मुद्रा मनहर लगी, राजवंशी दिखाते,
ये है जो सन्त तव पुर में नित्य भिक्षार्थ आते,
होता निर्वाह हम सबका गङ्ग का नीर पीते ।

(३५)

धूनी से पाप अति होता, धर्म की बात कर्ता,
पा के आदेश त्वरित, लिया भृत्य ने धूनि में से,
जल्दी से काष्ट पृथक किया अग्नि से दग्ध था जो,
भृत्यों ने ही उस लकड़ को चीर काढ़ा अहि था।

(३६)

आये तत्काल कुँअर दया के निधी सर्प पार्श्व,
था दग्धांगोरग सुपरमेष्ठी सुनो सर्प ने थी,
शुद्ध ध्याने मर कर बना सर्प पाताल स्वामी,
योगी भी तो उरग जलता, देख शर्मा गया था।

(३७)

वसन्ततिलक

शार्दूलजी नरक के दुःख भोग आया,
संसार में भटकता भव ले अनेकों,
योगी बना कर्श बढ़ा कठ नाम से था,
क्रोधी प्रचण्ड बनके बन में गया था।

(३८)

इन्द्रवज्रा

हो अश्व–आरूढ़ स्वधाम लौटे,
ले के चरों को युवराज आये,
आराम लेते सुर वाटिका में,
आनन्द में ही दिन रैन जाते।

(३९)

था पूर्व सम्बन्ध प्रभावती का,
संसार के भौतिक भोग भोगे,
आते कभी शासन देखने को,
होते खुशी भूप सदस्य मन्त्री।

(४०)

सत्न्याय क्या है? उसको विचारें,
नीतिज्ञ धी को परिषद् बिठा के,
दुःखी नहीं हो मम पौरवासी,
देखूं प्रजा कष्ट - विहीन मेरी।

(४१)

प्रस्ताव ऐसा नृप को बताते,
भूपाल से स्वीकृति ले हितों की,
भण्डार खोला जन के हितों में,
स्वर्गीय सा मोद प्रजाजनों में।

(४२)

चामर

विश्व तो कुचित्र है विकार से भरा हुआ,
था विरक्त चित्त यों कुमार का सदैव ही,
भोग कर्म शेष जो रहा उसे निवारते,
यों कुमार औ प्रभावती प्रमोद में रमे।

(४३)

इन्द्रवज्रा

प्राचीर आराम निकेत की थी,
बोले तभी नाथ प्रभावती से,
है नेमि की चित्रित लग्न वेला,
वे वेदि से लौट गये प्रभू थे।

पृष्ठ संख्या २७४

(४४)

देखो यहाँ यादव भी खड़े हैं,
श्रीकृष्ण भ्राता बलदेव भी हैं,
वैराग्य-रागी तज के प्रिया को,
लौटे, न मानी विनती किसी की।

(४५)

संसार माया मति मोह जालं,
कोई नहीं साथ सदेह जाते,
रे जीव ! तू ने बहुकाल खोया,
तृप्ती हुई ना अब चेत जा तू।

(४६)

तत्काल लोकान्तिक देव आये,
स्वामी करो तीर्थ प्रवृत्ति वाला,
स्वीकार चारित्र समा यही है,
उत्थान सांसारिक जीव का हो।

(४७)

भूपाल से यों युवराज बोले,
संसार है दुष्कर जान त्यागूँ,
भूपाल बोले अधुना तुम्हारी,
है ना अवस्था तप योग वाली।

(४८)

वामा सती से विनती करी थी,
चारित्र लूँ मैं अब विश्व झूठा,
है तीस वर्षायु अनूप तेरी,
चारित्र है दुष्कर पुत्र! मेरे।

(४९)

संसार में कष्ट अनेक भोगे,
आया नहीं पार भवाब्धि का है,
माया - मयूरी जन मोहती है,
प्राणी वृथा ही लख मुग्ध होता।

(५०)

होगी व्यथा यों मन में हमारे,
भोगे नहीं भौतिक सौख्य सारे,
थे भूप बोले यह राज ले लो,
आशा हमारी तब पूर्ण होगी।

(५१)

लेते निगोदी भव है अनेकों,
औ छेदना की सह वेदना को,
आवागमन् वे करते सदा ही,
है केवली-गम्य विधान सारा।

(५२)

है जंगलों में रहना अकेला,
शीतोष्ण के भी उपसर्ग होंगे,
काया तुम्हारी मृदु पुष्प जैसी,
है आयु तेरी अब तीस वर्षो।

(५३)

है व्यर्थ की ये ममता पिता श्री,
है ना जरा भी तन का भरोसा,
मिथ्या प्रपञ्ची जग-मोह-माया,
धर्मानुरागी तव हो, न रोको।

(५४)

दृष्टान्त दिक् दुर्लभ मर्त्य योनी,
ऐसी दशा है जग जीव की तो,
तृष्णा नहीं शासन की मुझे है,
आज्ञा मुझे दो पितु मातु मेरे।

(५५)

भूपाल औ मात प्रिया कुटुम्बी,
उद्विग्नता से कहने लगे थे,
तीर्थङ्करों ने सुख-भोग भोगा,
पश्चात् उन्होंने तन को तपाया।

(५६)

अज्ञानता में नर मानता है,
मेरा सभी है, पर है न कोई,
खाली करों से वह कूच करता,
होती महा दीन दशा उन्होंकी।

(५७)

भूपाल से पार्श्वकुमार आज्ञा,
स्वीकार के वार्षिक दान देते,
लेते उसे मानव देव देवी,
कोई नहीं वंचित दान से था।

(५८)

दे शक्र आज्ञा तब व्यन्तरों को,
स्वर्णादि से थाल रहे न खाली,
पूरा करे जृम्भक देव ला के,
दें दान स्वामी नित तीन घंटे।

(५९)

उत्साह में मानव-मेदिनी थी,
आये सुरी औ सुर देखने को,
था रम्य दीक्षोत्सव हर्ष वाला,
थी नारियाँ सुन्दर गीत गाती।

(६०)

दीक्षाभिषेकोत्सव को मना के,
आनन्द में थे नृप इन्द्र दोनों,
वाराणसी की जनता खुशी में,
अष्टाह्निका उत्सव को मनाती।

(६१)

देवों तथा मानव ने रची थी,
जो थी विशाला शिबिका अनोखी,
स्वामी उसीमें सुख से बिराजे,
आई विशाखा शुभ योग ले के।

(६२)

इन्द्र ध्वजा ही पहले चली थी,
पश्चात् चली थी चतुरंग सैना,
थी राजमार्गे चलती सवारी,
वाजित्र बाजे सुर दुन्दुम्भी भी।

(६३)

उद्यान था 'आश्रम' नाम वाला,
वृक्षों अनेकों बहु भाँति फूले,
आती सुगंधी मन मस्त होते,
बोले पतत्री प्रभु स्वागतों में।

(६४)

आके वहाँ पे शिविका उतारी,
जयघोष से गुञ्जित व्योम सारा,
थी भीड़ भारी नर-नारियों की,
सम्बन्धियों मित्र उदास में थे।

(६५)

यों दीन दुःखी कहते अरे रे,
संसार को त्याग कुमार जाते,
लेगा हमारी सुध कौन आ के,
आधार थे जीवन के हमारे।

(६६)

आकाश द्वारा कर पुष्प वर्षा,
थे देव देवी नमते पदों में,
थी वाटिका की महि भी खुशाली,
आये विभो! पावन मैं हुई हूँ।

(६७)

वैराग्य रागी बन नाथ आये,
थे पार्श्ववर्ती नृप के दुलारे,
दीक्षाभिलाषी प्रभु संग में थे,
संख्या उन्होंकी मिल तीनसौ थी।

(६८)

थी नोथ को अट्ठम की तपस्या,
आभूषणों को तज के वहीं पे,
जो पंचमुष्ठी प्रभु केश लोचे,
त्यों ही मनःपर्यव-ज्ञान जागा।

(६९)

शक्रेन्द्र ने मोद मना मना के,
डाला सुकन्धा पर देव दूष्यः,
एकादशो पोष वदी वदे यों,
श्री पार्श्व कल्याणक तीसरा है।

(७०)

बोले सभी शोश नमा पदों में,
स्वामी हमारी सुध आप लेना,
कोई अवज्ञा हमसे हुई हो,
देना क्षमा सागर, दीन बन्धु।

चामर

पाद-पद्म के पराग में प्रणाम है प्रभो,
हो कृपा मुनीन्द्र आपकी दयानिधे विभो !
क्रोध मान मोह लोभ की व्यथा निवारिये,
आपके समान ही विरक्त चित्त कीजिये ।

★

सर्ग १३

(१)

इन्द्रवज्रा

उद्यान से 'कोटकटे' पधारे,
धन्ना पड़ा पाद विनीत बोला,
स्वामी करो पावन गेह मेरा,
आहार के हेतु प्रभु पधारें।

(२)

आहार देता प्रभु को सुधन्ना,
को वस्त्र - आभूषण-पुष्प-वर्षा,
थी कुंकु-वर्षा, रव दुन्दुभी का,
ये पंच दिव्य प्रकटे वहाँ पे।

पृष्ठ संख्या २८५

(३)

लौटे वहां से प्रभु पारणा कर,
स्वामी खड़े थे उस भूमिका पे,
औ पीठिका आँगन में बना के,
धन्ना सदा पूजन में लगा था ।

(४)

छद्मस्थ वाली प्रभु की अवस्था,
देखो विहारी वन जा रहे हैं,
ये पैर इर्यासमिती विलोके,
हिंसा नहीं हो उपयोग साधे ।

(५)

सूर्यास्त होते प्रभुजो पधारे,
था कूप भी आश्रम के समोपी,
आये वहां थे वट-वृक्ष नीचे,
निष्कम्प मुद्रा करके खड़े थे ।

(६)

गङ्गा-किनारे कठ मृत्यु पाया,
अज्ञान युक्ता करके तपस्या,
वो था बना यों सुर मेघमाली,
देखे वहाँ पार्श्वकुमार आये ।

(७)

योगी बना, ना अब साथ काई,
आया अकेला वन-कुञ्ज में ही,
लूँ मैं इन्होंसे अब वैर पूरा,
मेरी प्रतिष्ठा इसने गँवाई ।

(८)

अत्यन्त क्रोधी बन मेघमाली,
माया विकुर्वी बन सिंह आया,
की गर्जना औ कर को पछाड़ा,
ध्यानस्थ में पार्श्व रहे, डरे ना ।

(९)

था वो अनेकों उपसर्ग करता,
चारों दिशा थी घनघोर काली,
बिच्छू बनाये अरु सर्प हाथी,
ध्यानाग्नि से हो भयभीत भागे।

(१०)

थे मच्छरों भी तन काटते थे,
ना वेदना थी प्रभु को जरा भी,
ना मोह काया पर था उन्होंको,
तल्लीन थे नाथ स्व-आत्म में ही।

(११)

देवांगना का कर रूप बोले,
क्यों व्यर्थ में जीवन को बिताते,
माता-पिता की कर सुश्रुषा तू,
रे ! जंगलों में कुछ ना मिलेगा।

(१२)

है कष्टकारी यह योग तेरा,
औ चाटुकारी कटु शब्द बोले,
अत्यन्त है कोमल काय तेरी,
ध्यानस्थ हो निश्चल क्यों खड़ा है?

(१३)

यों मेघमाली अति क्रोध में आ,
आकाश में मेघ घटा बढ़ाई,
चौंकी तभी विद्युत् बादलों में,
औ होगई थी घनघोर रात्रि।

(१४)

ठण्डी हवा से पशु काँपते थे,
थे घोंसलों में खग दुःख पाते,
भागे अनेकों बन छोड़ पक्षी,
भूरुह भी तो गिरने लगे थे।

(१५)

करता वहाँ वृष्टि प्रचण्ड धारा,
वारी चढ़ा था प्रभु घुट्टनों पे,
था नीर आया कटि भाग डूबा,
तत्काल वो अंबु गले चढ़ा था।

(१६)

त्यों पीठ कम्पा धरणेन्द्र आये,
नासाग्रवारी प्रभु को विलोका,
शीर्षोपरी सप्तफणा किये थे,
पद्मावती ने प्रभु को उठाये।

(१७)

माधुर्य वीणा सुमृदङ्ग बाजे,
ता–ता–थई नृत्य करे अनूठा,
वामा–सती–नन्दन के गुणों को,
गाने लगी थीं मिल अप्सराएँ।

(१८)

पद्मावती भी इस भाँति गाती,
क्यों कष्ट देता प्रभु को अरे ! रे,
आ जा पदों में प्रभु के अभागा,
स्वामी हमारे करुणानिधी हैं।

(१९)

क्यों हो रही आज अकाल वर्षा,
वर्षा रुके ना धरणेन्द्र देखे,
है मेघमाली अति ही दुरात्मा,
जो द्वेष ईर्षा वश में पड़ा है।

(२०)

औ पाश छोड़ा लख के उसीको,
त्यों ही हुआ कम्पित मेघमाली,
है पाश आता धरणेन्द्र का ही,
रक्षा करूँ मैं किस भाँति मेरी ?

(२१)

नागेन्द्र से सेवित पार्श्व स्वामी,
माँगूँ अभी मैं प्रभु से क्षमा को,
मैंने किया है अपराध भारी,
दुष्कर्म से दूषित मैं बना हूँ ।

(२२)

श्री पार्श्व हो, पारस रत्न जैसे,
त्रैलोक्य में स्थान मुझे मिले ना,
निर्लज्ज हो के तब पास आया,
क्षमा करो, दीन बना तुम्हारा ।

(२३)

नागेन्द्र बोले सुन मेघमाली,
श्री पार्श्व तीर्थङ्कर हैं दयालु,
सेवा इन्होंकी करना सदा हो,
है बन्धनों में उनको छुड़ाते ।

(२४)

माँगे क्षमा वो नत हो पदों में,
कल्याण मेरा अब कीजियेगा,
मैंने महा पाप किया यहाँ है,
मैं तो बना सेवक आपका हूँ।

(२५)

षट्पदी

उत्पात रात्री भर में किया था,
वो मेघमाली प्रभु के पदों में,
सच्चा बना दास सुभक्ति वाला,
स्थापा वहाँ पे 'अहिछत्र' तीर्थः,
नागेन्द्र देवी अरु मेघमाली,
यों प्रार्थना को करने लगे थे।

(२६)

शिखरणी

सदा सम्दर्शी हो सकल जग जीवों पर विभो!
तुम्हींको है स्वामिन्! मम तरि तिरा पार करना,
कहीं कोई का भी शरण अब ना, एक तुम हो,
करो रक्षा स्वामिन्! भव-दव-महा ताप हर के।

(२७)

महा वैरागी चित्त शमदम में नित्य रमते,
बने निर्मोही हो तज करम के बन्धन सभी,
नहीं देखा मैंने तुम सम यहाँ विश्व भर में,
दिला देना सम्यक्त्व सुखकर है दान हमको।

(२८)

द्रुतविलम्बित

मन मुदा धरणेन्द्र सुभाव में,
स्तुति करी परिवार समेत ही,
ललित नृत्य समाप्त किया तभी,
कर प्रणाम स्व-धाम गये सभी।

(२९)

इन्द्रवज्रा

प्रातः हुआ था जन पन्थ काटे,
शोभे कलिंगाचल की तराई,
कादम्बरी की अटवी जहाँ थी,
था कुण्डनामा सर पद्म वाला।

(३०)

आये विहारी बन के तपस्वी,
ले के तनोत्सर्ग कदम्ब छाया,
प्यासा कहीं से गज एक आया,
वो पार्श्व को देख विचार में था।

(३१)

त्यों ज्ञान जातिस्मरणं हुआ था,
तेवीसवें ईश करें तपस्या,
कैसे करूँ भक्ति अरे ! इन्होंकी,
तिर्यञ्च-योनि मम है यहाँ पे।

(३२)

ले पद्म आया वह नाथ-पार्श्वे,
पूँजे पदों को गज हर्ष में आ,
करता नमस्कार प्रसन्न हो के,
चम्पापुरी के जन देखते थे।

(३३)

जानी कहानी करकंडु राजा,
था दर्शनार्थी वन शीघ्र आया,
देखे, वहाँ नाथ नहीं मिले थे,
भूपाल का चित्त बना उदासी।

(३४)

नागेन्द्र आये करकण्डु पार्श्वे,
बोले महीपाल विलाप क्यों है,
सौन्दर्यशाली नव हाथ वाली,
श्री पार्श्व जैसी प्रतिमा दिखाई।

(३५)

पूजे उसे भूप प्रसन्न हो के,
औ चैत्य भी नूतन था बनाया,
हाथी मरा, देव बना वहाँ का,
था तीर्थ स्थापा 'कलिकुंड' नामा।

(३६)

उद्यान था राजपुरी समीपी,
स्वामी खड़े थे वट-वृक्ष नीचे,
आये वहीं ईश्वर भूप रानी,
स्वामी पदों में नत हो गये थे ।

(३७)

था ज्ञान जाति-स्मरण हुआ यों,
भूपाल ने भी भव पूर्व देखा,
स्वामी पधारे उस कुञ्ज में से,
राजा करें तीर्थ सु कूकड़ेसर ।

(३८)

वसन्ततिलक

आई बसंततिलका कर रम्य भूषा,
उद्यान 'आश्रमपदो' खुशियों मनाता,
श्री पार्श्वनाथ प्रभुजी मम धाम आवें,
मैं तो सुस्वागत करूँ मन मोदकारी ।

पृष्ठ संख्या २९७

(३९)

वृक्षों लता मुकुरती कलियाँ सुहाती,
श्रा श्राम्र-चारु कलिका पर भृङ्ग-भृङ्गी,
क्रीड़ा विहङ्ग करते सब झूमते थे,
थी कोकिला-रव करें प्रभुजी पधारे।

(४०)

ग्रामानुग्राम फिरते तन को तपाते,
होगी तुम्हें पथ व्यथा यह कौन जाने ?
भारी सहे परिषहो रह कुञ्ज में ही,
शीतोष्ण के समय में उपसर्ग भोगे।

(४१)

दो श्राप दर्शन पधार वाराणसी को,
सारी प्रजा तुम बिना दिल में उदासी,
रोती गरीब जनता तुम याद श्राते,
श्राश्रो यहाँ कर कृपा सुध लीजियेगा।

(४२)

वृक्षावली सघन कण्टक-युक्त भूमि,
होगी व्यथा चरण कोमल हैं तुम्हारे,
आओ विभो जनम भूमि बुला रही है,
आ के यहां पर हमें अब सांत्वना दो।

(४३)

इन्द्रवज्रा

विश्वासकारी हम हैं सदा ही,
दंगे क्षमासागर है न कोई,
सद्प्रार्थना है सुध लो हमारी,
स्वामी हमारे पर क्यों उदासी ?

(४४)

दीक्षा हुई थी तब से गये हैं,
चौरासियों वासर हो गये हैं,
आये न योगी बन के गये हैं,
वाराणसी के जन बोलते हैं।

(४५)

आगन्तुकों को यह पूछते थे,
देखे कहीं हैं ? प्रभु को बताओ,
सन्देश देगा प्रभु का हमें जो,
होगा हमारा प्रिय वो बटोही।

(४६)

द्रुतविलम्बित वृत्त

पुर-प्रजा इस भाँति विचारती,
श्रमण हो, युवराज गये कहाँ,
तन सुकोमल है उनका महा,
तज गये जननी पितु बंधु को।

(४७)

स्वसुख का कर त्याग प्रभावती,
स्मरण था प्रभु का उसके हृदे,
मम मनोरथ पूर्ण यहाँ नहीं,
कब बनूँ श्रमणी उनकी अहो !

(४८)

तजत भौतिक भोग वियोगिनी,
कब बने अरिहंत मिलूँ उन्हें,
सकल जीवन संयम में बने,
जगत चित्र विचित्र विचारती।

(४९)

इन्द्रवज्रा

आये विभो आश्रम-वाटिका में,
उद्यान में पादप तक्रो था,
स्वामी खड़े थे उस वृक्ष नीचे,
तापे तपस्या कर छट्ठ भत्तं।

(५०)

आई चतुर्थी मधुमास कृष्णा,
नक्षत्र राधा शुभ चन्द्र योगे,
पूर्वाह्न काले उस वाटिका में,
चारों दिशा में नव राग छाया।

(५१)

वसन्ततिलका

श्री पार्श्वनाथ करते क्षय घाति कर्मो,
कैवल्यज्ञान प्रकटा निज आत्म-ज्योति,
कैवल्य–दर्शन मिला समभाव आते,
देखें चराचर तथा जगजीव योनी ।

(५२)

इन्द्रवज्रा

शक्रेन्द्र का आसन यों चला था,
कैवल्यज्ञानी प्रभुजी हुए हैं,
सानन्द कल्याणक जान चौथा,
आये वहाँ चौंसठ इन्द्र हर्षे ।

(५३)

वसन्ततिलकावृत्त

रत्नोंमयी त्रिगढ़ मञ्जुल भाव वाला,
निर्माण व्यन्तर करे अति हर्ष में आ,
थे द्वार चार वर थी रचना सुरम्या,
इन्द्र ध्वजा रुचिर द्वार समीप शोभे ।

(५४)

इन्द्रवज्रा

छाया अशोकासन आत पत्र,
राजे प्रभामण्डल पुष्प-वृष्टि,
दिव्य ध्वनी चामर दुन्दुभो भी,
ये प्रातिहार्य जिनदेव के हैं।

(५५)

था द्वार जो पूर्व दिशा उसीसे,
श्रीपार्श्वनाथः प्रभु थे पधारे,
था पीठ 'तीर्थायनमः' उचारा,
स्वामी बिराजे उस पीठिका पे।

(५६)

त्रीद्वार थे आसन भी त्रिशोभे,
औ बिम्ब त्री थे जिनदेव जैसे,
यों ज्ञात होता परिषद्जनों को,
है देशना चौमुख से रसीलो।

(५६)

थे देव भी चार निकाय आये,
स्वस्थान बैठे कर वंदना को,
चौंतीस आप्तातिशयों अनोखे,
आमेय पच्चीस सुकोष ना था।

(५७)

थे व्योमगामी अरु भूमि गामी,
त्यौ व्याघ्र छागी वन जीव आये,
बैठे विरोधी नग मोर भी थे,
जो थे विरोधी सब शान्तभावी।

(५८)

उद्यान शोभा वनपाल देखी,
दी अश्वसेनाधिप को बधाई,
स्वामी! पधारो प्रभु वाटिका में,
शोभा अनूठी वन में बनो है।

(५६)

भूपाल का चित्त बना प्रमोदी,
सर्वाङ्ग भूषा उसको दिलाई,
वामा सती को यह सूचना दी,
है बाटिका में प्रभुजी पधारे।

(६०)

जावें नमस्कार करें उन्होंको,
तत्काल तय्यार महीप हो के,
वामा सती और प्रभावती भी,
आई प्रजा भी पुर की वहाँ थी।

(६१)

देखा महा त्रीगढ़ भूप हर्षा,
सद्भाव से तीन प्रदक्षिणा दे,
शक्रेन्द्र के पृष्ठ नरेन्द्र बैठा,
दोनों उठे औ स्तुति पाठ बोले।

(६२)

मालिनी

जगपति बन आये हो कृपासिन्धु स्वामी,
भव दव वन में है, कष्ट कर्मावली का,
प्रभु प्रवचन से ही आत्म उद्धार होगा,
चरण–कमल–सेवा दीजिये प्रार्थना है।

(६३)

दिवस यह बना है आजका सर्व श्रेष्ठी,
हम मन मुद भारी देख कैवल्य ज्ञानी,
हरष, हरष जागा रम्य मुद्रा जुहारी,
चरण-कमल-सेवा दीजिये प्रार्थना है।

(६४)

अब समकित शुद्धि कीजिये दास जानी,
जिस तरह तिराया आपने मेघमाली,
उस तरह हमें भी हे कृपालो तिरावें,
चरण–कमल--सेवा दीजिये प्रार्थना है।

(६५)

स्थिर मन विरती में कीजियेगा हमारा,
अरिदल सुभटों है आत्मघाती निवारो,
सुमति सदन के हैं आपही मार्गदर्शी,
चरण-कमल-सेवा दीजिये प्रार्थना है।

(६६)

स्थिर पद अविनाशी ज्ञान कैवल्य पाया,
प्रमुदित परिषद् है देशना दीजियेगा,
यह अवनि पवित्रा आज वाराणसी की,
चरण-कमल-सेवा दीजिये प्रार्थना है।

(६७)

इन्द्रवज्रा

शक्रेन्द्र राजा कर प्रार्थना की,
बैठे सभा में मन मोद भारी,
आये अनेकों मिल देव देवी,
स्वस्थान बैठे गढ़-त्री अनूठा।

सर्ग १४

❖

(१)

चामर

दे जिनेन्द्र देशना सु-मालकोश राग में,
सर्व विरति देश विरति धर्म दो प्रकाशते,
आत्म-तत्व शोधते चरित्र सर्व विरति में,
देशविरति द्वादशों गृहस्थ धर्म पालते ।

(२)

शिखरणी

अहो भव्य प्राणी ! तज भव जरा, औ मरण की,
महा कष्टी आत्मा नित दुःख सहे मोह वश में,
अनेकों पाते हैं करम–गति से कष्ट भव का,
तजो माया–मूर्च्छा, नर मत रखो शल्य मन में ।

पृष्ठ संख्या २०८

(३)

कभी ना हो हिंसा मन वचन से और तन से,
कभीं झूठी बातें न पर जन की आप करना,
तजो प्राणी चोरी परधन सभी धूल समझो,
परा नारी को माँ सम समझना ब्रह्म व्रत ले।

(४)

वरो वैराग्याणुव्रत सतत ही पालन करो,
रमाओगे आत्मा त्रिगुणव्रत से कर्म कटते,
हृदे में लो शिक्षाव्रत समझ के पालन करो,
नहीं कोई आता परिजन अरे ! व्यर्थ ममता।

(५)

द्रुतविलम्बित

इस प्रकार सुनी प्रभु देशना,
विरति भाव जगा बहु मर्त्य को,
श्रमण औ श्रमणी व्रत ले बने,
अरु बने बहु श्रावक श्राविका।

(६)

चामर

वासक्षेप था किया जिनेन्द्र आर्यदत्त पे,
त्रीपदी प्रदान थी हुई गणेश ग्यारहों,
सृष्टि नाश औ उत्पन्न काल ज्ञान जान के,
आर्यदत्त ने रचा महान द्वादशांग को।

(७)

अश्वसेन भूप का विरक्त चित्त था बना,
हस्तिसेन पुत्र को दिया स्वराज आपने,
नाथ पास भूप ने लिया सुसाधु मार्ग को,
सर्व विरति, राज्यराज्ञि औ प्रभावती बनी।

(८)

इन्द्रवज्रा

स्वामी विहारी बन के पधारे,
नागेन्द्र कर्ता पद पद्म सेवा,
पद्मावती मात जिनेन्द्र-सेवी,
दोनों बने शासन के हितैषी।

(९)

चामर

नाथ संग अष्ट प्रातिहार्य औ ध्वजा चले,
स्वर्ण पद्म को रखे पदे पदे सुरेन्द्र यों,
नाथ को प्रणाम वृक्ष जीव मार्ग में करें,
देख नाथ को विहंग जन्म धन्य मानते ।

(१०)

इन्द्रवज्रा

श्री सङ्घ चारों प्रभु सङ्ग में थे,
था पुंड्र का देश अनार्य प्राणी,
वे आर्य होते प्रतिबोध पा के,
दीक्षा सुशिक्षा प्रभु पास लेते ।

(११)

ले नाथ से सागरदत्त दीक्षा,
अन्यत्र स्वामी विचरे वहाँ से,
अनुक्रमे नागपुरी पधारे,
उद्यान में त्रीगढ़ था, बिराजे ।

(१२)

दे नाथ ज्ञानामृत देशना को,
सारी बनी थी परिषद् प्रमोदी,
संसार झूठा उनको लगा था,
ऊठा उसी काल प्रणाम कर्ता।

(१३)

की याचना थी तब बन्धुदत्त,
स्वामी बतावें मम नारियों षट्,
क्यों लग्न होता, अवसान होता,
यों कष्ट पाये अति नाथ मैंने।

(१४)

विन्ध्याद्रि है भारत देश का ही,
राजा शिखासन वन का निवासी,
था भिल्लपल्ली पति क्रूरचेता,
औ कामुकी, हिंसक वृत्ति वाला।

(१५)

भूले हुए मारग साधुओं को,
की सुश्रुषा थी उनकी वहाँ पे,
आहार-पानी उनको दिया था,
तूने उन्होंको पथ भी दिखाया।

(१६)

धर्मोपदेशोत्तम पा वहाँ तू,
माना नमस्कार महान मन्त्र,
आचार्य से जो तुझको मिला था,
आराधना में स्थिर हो बिराजा।

(१७)

था केशरी सिंह महान आया,
त्यों श्रीमती ने नृप ने लखा था,
तत्काल बोला भयभीत ना हो,
हाथों उठाया धनु को तभी था।

(१८)

बोली तभी थी गुरु वाक्य मानो,
है आपका नेम उसे विचारो,
शार्दूल ने वार किया तभी था,
तत्काल ही मृत्यु हुई तुम्हारी ।

(१९)

सौद्धर्म द्यौलोक गये वहाँ से,
स्वर्गीय दोनों सुख-भोभ भोगे,
दोनों च्यवे थे तज स्वर्गभूमि,
आये प्रतीची सुविदेह क्षेत्रे ।

(२०)

द्रुतविलम्बित

कुरु मृगाङ्क नरेन्द्र प्रताप से,
अति सुखीवर चक्रपुरी प्रजा,
रुचिर बाल शशाङ्क सुराज्ञिनी,
बन गया सुत तू उनका सही ।

(२१)

सुबलवान 'सुभूषण' भूप थे,
'कुरूमती' उनकी वर थी प्रिया,
कुँअरि रम्य 'वसन्त वरूथिनी',
बन गई वर सुन्दर रूप में।

(२२)

यश 'किरातमृगाङ्क' कुमार का,
श्रुत सदा सुनती अनुराग में,
रुचिर चित्रित चित्त बना दिया,
लख उसे अनुराग जगा तुझे।

(२३)

'कुरु मृगांक' सुभूषण सोचते,
सुत सुता अब यौवनकाल में,
प्रणय कृत्य विलोक नरेन्द्र ने,
कर दिया कर-पीड़न हर्ष से।

पृष्ठ संख्या २१५

(२३)

फिर यहाँ पर भी मिलना हुआ,
मिलन था यह तो भव पूर्व का,
जब शिखासन के भव में मिले,
उस समा तव थी वह श्रीमती ।

(२४)

हनन जीव किये वन कुञ्ज में,
फल मिला तुझको उसका यहाँ,
विविध कष्ट तुझे सहने पड़े,
फिर सुनो, प्रभु ने उसको कहा ।

(२५)

वसन्ततिलकावृत्त

श्रीमन् ! इसी विजय में नृपराज तू था,
भूपाल वर्धन महान पराक्रमी था,
थी माँग की तव प्रिया सु-वसन्तसेना,
क्रोधाग्नि से तन तपा सज सैन्य तेरा ।

(२६)

भारी लड़ा अरि भगा, रणभूमि से था,
औ तप्त भूप अपनी यह हार देखी,
आया प्रचण्ड बन के लड़ने तभी था,
वीरत्व से द्वय लड़े रण में मरा तू।

(२७)

द्रुतविलम्बित

पति मरा यह जान 'वसन्त' ने,
अनल से करती वह स्नान थी,
मर गई कर आर्त महान् था,
तमप्रभा पति पत्नि वहाँ गये।

(२८)

भरत क्षेत्र सुपुष्कर द्वीप में,
पुरुष निर्धन का सुत तू बना,
वह 'वसंत' दरिद्र सुता बनी,
फिर मिलाप हुआ द्वय का वहाँ।

(२९)

मिथुन मंजुल यौवन धाम में,
विचरते रहते व्यवसाय में,
श्रमणियों लख के द्वय ने कहा,
कृत कृतार्थ करो मम गेह को।

(३०)

परम पात्र पवित्र मिले कभी,
उदय मानव का जब हो सही,
कर निमन्त्रित प्रासुक दान से,
फिर कहा तव स्थान कहाँ बना।

(३१)

इन्द्रवज्रा

है बालचन्द्रा गणनायिका जो,
है धर्मशाला वसु सेठ पार्श्व,
संध्या समा था शुभ भावना में,
दोनों गये दर्शन हेतु से थे।

(३२)

त्यों बालचन्द्रा तुमको बिठा के,
धर्मोपदेशामृत को पिलाया,
श्रद्धा बढ़ी थी हृय की वहीं ही,
ले के गया द्वादश नेम को तू।

(३३)

औ ब्रह्म द्यौ में तुम दो गये थे,
स्वर्गीय सौन्दर्य विलास भोगा,
आये यहाँ पे च्यव के वहाँ से,
बैठे यहाँ हो तुम आज दोनों।

(३४)

तूने लिया था भव-भिल्ल का जो,
हिंसा करी थी बहु जीव मारे,
तिर्यञ्च रोते बन के वियोगी,
भोगा यहाँ कर्म विपाक तू ने।

(३५)

ग्रौ बन्धुदत्त प्रभु को नमा था,
यों प्रार्थना है मम दीनबन्धु,
स्वामी ! कहाँ पे अब जन्म होगा,
उद्धार कैसे इस जीव का हो।

(३६)

जावें सहस्रार अमर्त्य लोके,
दोनों वहाँ से च्यव के बनोगे,
सौन्दर्य है पूर्व विदेह क्षेत्रे,
तू चक्रवर्ती यह पट्टरानी।

(३७)

संसार को त्याग विराग में तू,
लेगा सुदीक्षा भव-बन्ध तोड़े,
ऐसी कहानी सुन बन्धुदत्त,
ले ली प्रवृज्या प्रभु से तभी थी।

(३८)

मालिनी

जिनवर विचरे घी–बीज का दान देते,
नव निधि नृप को उद्यान का भृत्य बोला,
समवसरण की सौन्दर्यता आप देखें,
नवनिधि नृप आया नाथ को वन्दना की।

(३९)

प्रभु–प्रवचन मीठा था अनूठा रसीला,
उलट–पुलट पाशा था बताते भवों का,
उस समय खड़ा हो नाथ से प्रार्थना की,
नव निधि मुझको ही प्राप्त कैसे हुई है ?

(४०)

जब जनम हुआ तेरा महा राष्ट्र देशे,
नर-भव वन–माली नाम तेरा अशोकः,
सतत कुसुम ले हेल्लूर में बेचता था,
वणिक-सदन में अर्हन्त की थी प्रतिष्ठा।

(४१)

उस समय गया तू सद्म में देखने को,
सुलट मन वहाँ अर्हन्त के बिम्ब देखें,
निरख कुसम को तू छाबड़ो को लिये थे,
प्रभु चरण अनूठे पुष्प नौ थे चढ़ाये।

(४२)

शुभ उदय हुआ ऐश्वर्यशाली बना तू,
सुनवनिधि मिली है पूर्व के पुण्य से ही,
नित प्रति रहता तू भावना शुद्ध तेरी,
शुभमय सुख भोगे जान पाँचों भवों में।

(४३)

मालिनी

नृपति-भव-कहानी पूर्व की थी प्रकाशी,
अब अमर विमानानुत्तरानन्द दायी,
मर कर उसमें तू जायगा सत्य मानो,
सुन जिनवर-वाणी, भूप ने ली सुदीक्षा।

(४४)

द्रुतविलम्बित

जगत-जीव बने प्रतिबोध से,
उचरते व्रत द्वादस नाथ से,
नगर गाँव पुरी वन कुञ्ज में,
प्रभु विहार करें पद पद्म पे।

(४५)

इन्द्रवज्रा

खल्खल् करे निर्झर नीर मीठा,
है पीपली शीशम औ बहेड़ा,
है आँवला काय फलारणी का,
राजी हुए हैं जिनराज आये।

(४६)

ऊँचे अशोकार्जुन औ भिलामा,
है कर्मदा रायण औ करञ्जी,
है सेमला वृक्ष हरीतकी भी,
राजी हुए हैं जिनराज आये।

(४७)

है नाग चम्पा वट ताड़ सागो,
शोभा चमेली सुकनेर कुञ्जे,
है कन्द मूले ठिलता प्रफुल्ला,
राजी हुए हैं जिनराज आये।

(४८)

है टिंबरू वृक्ष पलाश झाड़ी,
तापिच्छ जावन्त्रि अनेक बूटी,
पौधे अनेकों गुड़वेल कथीर,
राजी हुए है जिनराज आये।

(४९)

अरविंद पे भृङ्ग जलाशयों में,
बोले वहाँ सारस औ करञ्जा,
है कीर मैना जल जन्तु बोले,
राजी हुए हैं जिनराज आये।

(५०)

वृक्षावली रम्य वनस्थली थी,
बोले पपीहा पिक मीत गाती,
सारङ्ग का नृत्य द्रुमावली में,
राजी हुए हैं जिनराज आये।

(५१)

स्वामी पधारे वनकुञ्ज भारी,
है तीर्थ 'संमेतगिरी' तराई,
था भोमियादेव विलोक आया,
की वन्दना थी प्रभु के पदों में।

(५२)

वसन्ततिलक

जो वीश है इस गिरीवर की सुश्रेणी,
निर्वाण भूमि परमोज्ज्वल राजती है,
उन्नीसवीं गिरि-शिखा नमिनाथ आये,
है प्रार्थना गुणनिधे! गिरि पे पधारें।

(५३)

निर्वाण नेमि जिन का गिरनार पश्चात्,
है सार्ध सप्त शत त्रियासी सहस्र वर्ष,
तैंतीस ले श्रमण को प्रभु आप आये,
सानन्द पावन किया गिरिराज को है।

(५४)

इन्द्रवज्रा

थी अष्टमी श्रावण मास राधा,
संलेखना में मुनिराज बैठे,
भावात्म में ही अति उच्च श्रेणी,
निर्वाण पाये प्रभु संग में ही।

(५५)

थे साधु षोड़श सहस्र बने तपस्वी,
थी दिक्षिता सुअड़तीस-सहस्र साध्वी,
थे सार्ध तीन शत चौदह पूर्वधारी,
थे साधु चौदह शतावधि ज्ञान वाले।

(५६)

शार्दूल विक्रीडित

थे लक्षेक सहस्त्र चौंसठ बने थे श्रावकाचार में,
उञ्चालीस हजार औ विनयिनी त्रीलक्ष थी श्राविका,
था गार्हस्थ्य तजा विरति में वर्षायु थी तीस की,
योगाभ्यास सुवर्ष सत्तर हुए सौ वर्ष की आयु ली ।

(५७)

वसन्ततिलकावृत्त

सिद्धात्म के चरण में नित वन्दना है,
कर्मों भवान्तर किये प्रभु ना मिले थे,
था स्पर्श लोह मणि का वह स्वर्ण होता,
सम्यक्त्व त्यों मणि मिली प्रभुपार्श्व गाये ।

(५८)

श्री वर्द्धमान प्रभु बाद सुधर्म स्वामी,
पट्टावलि रुचिर जम्बु परम्परा में,
जगच्चन्द्रसूरि तप गच्छ प्रसिद्ध राया,
ज्ञानी महा विजय हीर प्रवेश धीमान् ।

(५६)

आचार्य सोहमगणे गुरुरत्न ध्याया,
जैनागमे विजयसूरि क्षमा प्रतापो,
देवेन्द्र पट्टधर थे तस पट्ट कल्याण,
वैराग्य में विजय सूरि प्रमोद राजे ।

(६०)

राजेन्द्रसूरि मतिमान् धनचन्द्र सूरि,
भूपेन्द्रसूरि तस पट्ट यतीन्द्रसूरि,
विद्यासुचन्द्र विनयी बुध – मण्डली में,
स्वाध्याय में रत सदैव गुणानुरागी ।

(६१)

चामर

नाथ सम्भवादि–छत्र –छाँह ले प्रमोद में,
चार मास का निवास 'पादरू पुरी' किया,
बाण–पाणि–व्योम–नेत्र शुक्ल ज्ञानपंचमी,
पार्श्वनाथ–काव्य पूर्ण है यतीन्द्र की दया ।

द्रुतविलम्बित

गुरु यतीन्द्र मुनीन्द्र गुणीन्द्र की,
जब कृपा मुझ पे उनकी हुई,
'पथिक' मार्ग मिला गुरुदेव से,
मम सुखाय लिखा यह काव्य है ।

★

पृष्ठ संख्या ३२६

पंच-पद्य-पुष्पांजली

❀

(१)

मेरी है विनती यतीन्द्र प्रभु को मिथ्यात्व को मेटिये,
जन्मोजन्म जिनेन्द्र शासन मिले है भावना दास को,
पाये हैं इस जन्म में गुरु कृपा से सत्य मे आपको,
तारोगे अब तो मुझे हृदय में विश्वास है आपका।

(२)

नित्यानन्द अनन्त ज्ञान गुण की आराधना की स्थली,
स्वामी आप दशावतार करके सिद्धात्म की ज्योति में,
है संसार–भवाब्धि तार तरिको सम्यक्त्व दे दान को,
ऐसा दो वरदान आप मुझको आत्मा विमोही बने।

पृष्ठ संख्या ३३०

(३)

मैंने कर्म सहर्ष बन्धन किये, कैसे कटेंगे विभो !;
अज्ञानी यह जीव है, उदय हो आराधना ज्ञान की;
हो चारित्र पवित्र प्राप्त तप से आत्मा बने संयमी,
मैत्री भाव प्रसाद में, सम गिनूँ जीवात्म को मैं सदा।

(४)

मैं हूँ पंचम काल में, कुमति का साम्राज्य निःसीम है,
देखूँ सत्य कहीं नहीं मिल रहा आडम्बरी जीव है,
है आलम्बन आपका अब मुझे उद्धार मेरा करो,
श्री शंखेश्वर तीर्थ मण्डन विभो ! विघ्नावली को हरो।

(५)

स्वामी पार किये अनन्त जग जी, दे तात्विकी देशना,
पादाम्भोज-प्रपूज के समकिती हो मेघमाली तिरा,
पातालेन्द्र-सुभक्ति में, गुण कथा पद्मावती गावती;
विद्याचन्द्र मुनीन्द्र का नमन है पूरो मनोकामना।

★

मनोहरलाल डाँगी द्वारा
श्री वर्धमान प्रिंटिंग प्रेस
निम्बाहेड़ा (राजस्थान)
में मुद्रित

मनोह्रलाल डांगी द्वारा
श्री वर्धमान प्रिंटिंग प्रेस
निम्बाहेड़ा (राजस्थान)
में मुद्रित